वर्ष : 47
अंक : 1

जनवरी - मार्च 2026

मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

यूजीसी केअर सूचीबद्ध एवं समकक्षी समीक्षित शोध पत्रिका

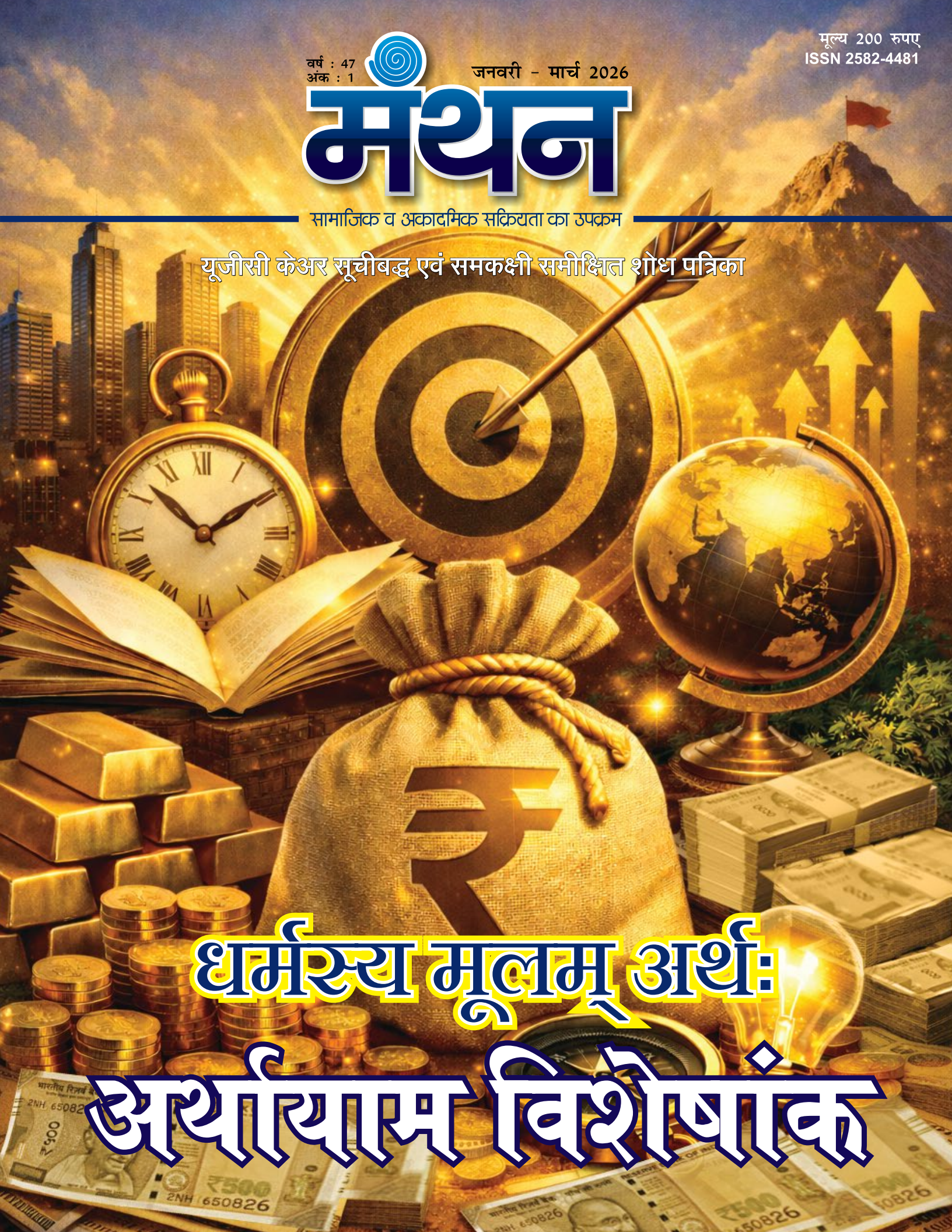

धर्मस्य मूलम् अर्थः

अर्थायाम विशेषांक

200 यूनिट तक बिजली पर बिल हाफ

श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

प्रदेश के 42 लाख उपभोक्ताओं को लाभ

- घरेलू उपभोक्ताओं को 200 यूनिट तक विद्युत खपत पर 200 यूनिट तक हाफ बिजली का पूरा लाभ
- 200 से 400 यूनिट तक बिजली खपत पर अगले 1 वर्ष तक 200 यूनिट तक हॉफ बिजली बिल का लाभ

क्षमता	सब्सिडी केन्द्र+ राज्य सरकार
1 किलोवॉट	30+15 = 45 हजार
2 किलोवॉट	60+30 = 90 हजार
3 किलोवॉट	78+30 = 1 लाख 8 हजार

प्रधानमंत्री सूर्य घर मुफ्त बिजली योजना

- **मुफ़्त बिजली:** 3 किलोवाट क्षमता वाला रूफटॉप सोलर सिस्टम लगाने पर, प्रति माह 360 यूनिट तक बिजली उत्पादन
- **अतिरिक्त बचत:** 3 किलोवाट के सोलर सिस्टम से ₹26,000 प्रति वर्ष तक बचत
- **सब्सिडी लाभ:** केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा संयुक्त रूप से 1 किलोवॉट क्षमता के सोलर प्लांट स्थापना पर 45,000, 2 किलोवॉट पर 90,000 रुपए और 3 किलोवॉट के सोलर प्लांट की स्थापना पर अधिकतम 1,08000 रुपए की सब्सिडी
- **लोन सुविधा:** सोलर प्लांट की स्थापना पर बैंकों द्वारा 6% ब्याज दर पर ऋण
- **अतिरिक्त आय:** उत्पन्न अधिशेष बिजली को ग्रिड को बेचकर अतिरिक्त आय

QR स्कैन करें

सुशासन से समृद्धि की ओर

Visit us : ChhattisgarhCMO DPRChhattisgarh www.dprcg.gov.in छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

आरएनआई 32486/78 आईएसएसएन 2582-4481

₹ 200/-

अतिथि संपादक
प्रो. अश्वनी महाजन

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
प्रो. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

विशेषज्ञ संपादक मंडल
प्रो. सुनील के. चौधरी
प्रो. शीला राय
डॉ. चन्द्रपाल सिंह
डॉ. सीमा सिंह
डॉ. राजीव रंजन गिरि
श्री प्रदीप देसवाल
डॉ. प्रदीप कुमार
डॉ. चन्दन कुमार
डॉ. राहुल चिमूरकर
डॉ. महेश कौशिक

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitscopy@gmail.com

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 47, अंक : 1 जनवरी-मार्च 2026

अर्थायाम विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

यूजीसी केअर सूचीबद्ध एवं समकक्षी समीक्षित शोध पत्रिका

मंथन सामाजिक एवं अकादमिक सक्रियता को समर्पित एक बहुअनुशासनिक, समकक्षी समीक्षित, शैक्षणिक एवं विषयवस्तु केंद्रित शोध पत्रिका है, जो त्रैमासिक आवृत्ति से वर्ष में चार बार प्रकाशित होती है। यह हर बार किसी एक विशिष्ट विषयवस्तु पर केंद्रित होती है। यह मानविकी के विभिन्न अनुशासनों में शोधरत लेखकों के मौलिक शोधलेखों का स्वागत करती है।

सर्वाधिकार © एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान। सर्वाधिकार सुरक्षित।

अस्वीकरण: एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान प्रतिष्ठान अपने प्रकाशनों में प्रयुक्त सूचनाओं एवं तथ्यों की परिशुद्धता एवं सटीकता सुनिश्चित करने के लिए सभी संभव प्रयास करता है। फिर भी अपने प्रकाशनों में प्रयुक्त विषयवस्तु की परिशुद्धता, पूर्णता एवं उपयुक्तता के संबंध में कोई वचन नहीं देता और न ही इस संबंध में कोई अभिवेदन देता है। इन प्रकाशनों में अभिव्यक्त विचार एवं दृष्टि लेखकों की है; आवश्यक नहीं है कि एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान इनसे सहमत हो।

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	संपादकीय		03
2.	लेखकों का परिचय		08
3.	अतिथि संपादकीय		09
4.	एकात्म मानववाद : अर्थायाम	पं. दीनदयाल उपाध्याय	12
5.	विकास के भारतीय स्वरूप का दर्शन	डॉ. मुरली मनोहर जोशी	20
6.	धर्म से अर्थ तक: भारत की आर्थिक दिशा का प्रतिमान	डॉ. कृष्ण गोपाल	25
7.	भारतीय कृषि और किसान: एक परिदृश्य!	श्री नरेश सिरोही	31
8.	समकालीन आर्थिक व्यवहार में भारतीयता	प्रो. पी. कनकसभापति	40
9.	उद्योग जगत की स्थिति और भविष्य	प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा	44
10.	कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'अर्थ' पुरुषार्थ	प्रो. जवाहरलाल	51
11.	श्रमिक क्षेत्र में भारतीय दृष्टि की पुनर्संरचना	श्री सजी नारायणन	56

आनुषंगिक आलेख

1.	विकेंद्रित अर्थव्यवस्था	पं. दीनदयाल उपाध्याय	50

छत्तीसगढ़ रजत महोत्सव

छत्तीसगढ़ की नई स्टार्टअप नीति 2025-30

प्रमुख आकर्षण

- नवाचार प्रोत्साहन के लिए सशक्त, समावेशी एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी स्टार्टअप इकोसिस्टम निर्माण
- हब-एंड-स्पोक मॉडल पर आधारित इनक्यूबेशन नेटवर्क का विकास
- वर्ष 2030 तक 5,000 से अधिक नए स्टार्टअप्स को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य
- वित्तीय सहायता, इनक्यूबेशन, मेंटरशिप, बाजार संपर्क, क्षमता निर्माण तथा प्रौद्योगिकी एवं बौद्धिक संपदा समर्थन सुविधाओं का विकास
- ₹100 करोड़ के छत्तीसगढ़ स्टार्टअप (कैपिटल) फंड, ₹50 करोड़ के क्रेडिट रिस्क फंड
- सीड फंड सहायता (₹10 लाख तक)
- ब्याज अनुदान, किराया अनुदान, पेटेंट एवं गुणवत्ता प्रमाणीकरण अनुदान
- रोजगार सृजन सब्सिडी सहित कई महत्वपूर्ण प्रोत्साहनों का प्रावधान
- महिला उद्यमियों, अनुसूचित जाति/जनजाति, दिव्यांगजन, सेवानिवृत्त सैनिक, नक्सल प्रभावित व्यक्तियों के लिए विशेष प्रोत्साहन
- पब्लिक वेलफेयर एवं सर्कुलर इकोनॉमी से जुड़े स्टार्टअप्स के लिए भी विशेष प्रोत्साहन

नए विचार
नई ऊर्जा
नया विश्वास

अब कल्पनाएं होंगी साकार

श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

हमसे जुड़ने के लिए QR स्कैन करें

सुशासन से समृद्धि की ओर

छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

ChhattisgarhCMO
DPRChhattisgarh
www.dprcg.gov.in

संपादकीय

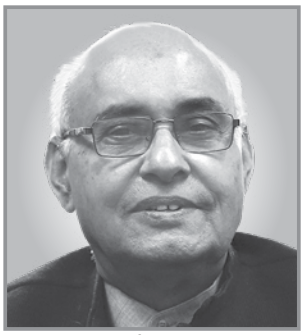

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

पश्चात्य नववर्ष 2026 की हार्दिक मंगलकामनाएँ। वर्ष का यह पहला अंक है 'अर्थायाम विशेषांक'। इस वर्ष की विशेषांक शृंखला में यह प्रथम् है। एकात्म मानव के लक्ष्यभूत कार्य को दीनदयाल उपाध्याय चार आयाम वाला मानते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में चतुर्पुरुषार्थ कहा जाता है, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। वस्तुत: प्रथमांक 'धर्म विशेषांक' होना चाहिए, लेकिन संपादकीय सुविधा की दृष्टि से 'अर्थायाम विशेषांक' को प्रथम् वरीयता प्राप्त हो गई। द्वितीय विशेषांक 'धर्मायाम' तृतीय 'कामायाम' तथा चतुर्थ 'मोक्षायाम' विशेषांक होंगे।

अब इस अंक की बात थोड़ी विस्तार से करते हैं। एकात्म मानवदर्शन का महत्त्वपूर्ण विचार है, चतुर्पुरुषार्थ। इन पुरुषार्थों को विविधायामों में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विवेचित किया है। अत: 'अर्थायाम' को हमें उन्हीं के माध्यम से जानने का प्रयत्न करना चाहिए। दीनदयाल उपाध्याय के संपूर्ण सार्वजनिक कार्यों का मंच भारतीय जनसंघ था। अत: वे जनसंघ के संदर्भ में ही अपने विचारों का स्पष्टीकरण देते हैं।

समग्रतावादी दार्शनिक होने के कारण पं. दीनदयाल उपाध्याय उन लोगों से हर विषय पर असहमत रहते हैं, जो जीवन के किसी विशिष्ट आयाम को जीवन की समग्रता का नियामक मान बैठते हैं अथवा एक ही पहलू की ऐसी अतिरेकी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जिसमें जीवन के अन्य विविध पहलुओं की उपेक्षा हो जाती है। इस संदर्भ में उपाध्याय लिखते हैं:

"भारतीय जनसंघ के पास एक स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है; किंतु उसका स्थान हमारे संपूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का। पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थप्रधान है। हम भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करना चाहते हैं। अत: यह निश्चित है कि जनसंघ उन अर्थशास्त्रियों व दलों से, जो अर्थ के सामने जीवन के प्रत्येक मूल्य की उपेक्षा करके चलना चाहते हैं, इस मामले में सदैव पीछे रहेगा। जनसंघ हृदय, मस्तिष्क और शरीर तीनों का सम्मिलित विचार करता है। इसी कारण कुछ लोग जनसंघ पर यह आरोप लगाते हैं कि जनसंघ आध्यात्मिकता की उपेक्षा करता है, महर्षि अरविंद आदि महापुरुषों की भाषा नहीं बोल पाता। हम दोनों ही प्रकार के आरोपों का स्वागत करते हैं और इतना ही कहना चाहते हैं कि अर्थ, समाज की धारणा के लिए आवश्यक है। जितने मात्र से व्यक्ति अपना भरण-पोषण करके अन्य श्रेष्ठ मूल्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास कर सके, उतने को ही हमने अपने कार्यक्रम में स्थान दिया है।"[1]

अपने आर्थिक चिंतन को व्याख्यायित करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा' नामक पुस्तक लिखी। पुस्तक में अर्थनीति की विवेचना करते हुए उन्होंने अपने 'एकात्म मानव' के अर्थायाम की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। "समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को 'अर्थायाम' कहा गया है।"[2]

प्रगतिशील युवा विकसित छत्तीसगढ़

खेल प्रोत्साहन योजना लागू, ओलंपिक विजेताओं के लिए **₹1-3 करोड़** का पुरस्कार और ग्रामीण क्षेत्रों में खेल ढांचे का विकास

सरकारी नौकरियों में अधिकतम आयु सीमा में 5 वर्ष की छूट, लगभग **32,000 पदों** पर भर्ती

नवा रायपुर में क्रिकेट अकादमी की स्थापना हेतु छत्तीसगढ़ स्टेट क्रिकेट संघ को **7.96 एकड़** भूमि आवंटित

160 आईटीआई को मॉडल संस्थान में बदलने हेतु **₹484 करोड़** स्वीकृत

राज्य में युवा स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए **उद्यम क्रांति** योजना

34 नगरीय निकायों में "नॉलेज बेस्ड सोसाइटी" हेतु **लाइट हाउस** निर्माण की पहल

हमसे जुड़ने के लिए QR स्कैन करें

/ChhattisgarhCMO
/DPRChhattisgarh
www.dprcg.gov.in

सुशासन से समृद्धि की ओर

श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

भारतीय संस्कृति में अर्थ

भारतीय संस्कृति में 'धर्म' को आधारभूत पुरुषार्थ माना गया है। 'सुखस्य मूलम् धर्मः। धर्मस्य मूलमर्थः।' चाणक्य के इस कथन के अनुसार 'अर्थ के बिना धर्म नहीं टिकता।'[3] 1953 में लिखे अपने प्रथम अर्थनीति प्रलेख में उपाध्याय लिखते हैं:

"..... हम जानते हैं कि भारतीय ढ़ंग सदा से ही धर्म का ढ़ंग रहा है (मजहब का नहीं) और धर्म के इस ढ़ंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के लिए नक्शे को तैयार करने की जरूरत है। धर्म की वेदों की व्याख्या हम लेते हैं जिसमें उसके 12 लक्षण गिनाए गए हैं। इनमें धर्म का आद्यलक्षण सबसे महत्त्वपूर्ण है (श्रमेण तपसा सृष्टा ...) और वह है 'श्रम'। ..... 'श्रम' को धर्म का पहला लक्षण बताया। श्रम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एंजेल्स के जन्म तक रुका नहीं रहा। वह अति पुरातनकाल में सहज अनुभूति से हमने मानवता को दे दिया था। श्रम करना मनुष्य का मूलभूत कर्तव्य है (Duty to work)। इसी प्रकार मनुष्य को श्रम करने का यह अधिकार देना राज्य का मूलभूत कर्तव्य है। .....अतः श्रम का अधिकार (Right to work) मनुष्य का संवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम करने का अवसर दे। इन अवसरों में किसी प्रकार का भेदभाव, न जाति का, न रंग का और न लिंग का होने दें। राष्ट्र के पुनर्निर्माण की जो भी योजना बनाई जाए उसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना होना चाहिए (Full employment)"[4] इसी आधार पर दीनदयाल उपाध्याय पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण के संदर्भ में सदैव यह आग्रह करते रहे कि हमें अपना आयोजना-लक्ष्य घोषित करना चाहिए 'सब को काम'।

धन का मनोविज्ञान

धन का अभाव मनुष्य को चोर बनाता है। अभाव के क्षणों में की गई चोरी को भारतीय शास्त्रकार अपराध नहीं वरन् 'आपद्धर्म' की संज्ञा देते हैं।

"उन्होंने (विश्वामित्र ने) धर्म की अनेक मर्यादाओं को भंग किया। आपद्धर्म की संज्ञा देकर शास्त्रकारों ने उनके इस व्यवहार को उचित ठहराया है। यदि अर्थ के अभाव की आपत्ति बनी रहे, तो फिर आपद्धर्म अर्थात् चोरी ही धर्म बन जाएगा। यदि यह आपत्ति समष्टिगत हो जाए अथवा समष्टि का बहुतांश इससे व्याप्त हो जाये, तो वे एक दूसरे की चोरी करके अपने आपद्धर्म का निर्वाह करेंगे।"[5]

अर्थात् "समाज में अर्थ का अभाव अथवा अभावमूलक नियोजन समाज में अधर्म को धर्म बना देता है। वैसे ही अर्थ का प्रभाव भी धर्म का नाश करता है। .....अर्थ जब अपने में या उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों में और उससे प्राप्त भोग-विलास में संग (आसक्ति) उत्पन्न कर देता है तब अर्थ का प्रभाव कहा जाता है। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'... ... जब समाज में सभी 'धनपरायण' हो जाएँ तो प्रत्येक कार्य के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता होगी। धन का यह प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देगा।[6]

इसलिए वे यह प्रतिपादित करते हैं कि "समाज के मानदंड ऐसे बनाए जाएँ कि हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके।..... पैसे से ही मूल्य आँकने का परिणाम यह होगा कि दुर्बल की रक्षा ही नहीं हो पाएगी। शरीर शक्ति में दुर्बल अपनी बुद्धि का उपयोग कर धूर्तता से धन कमाकर अपनी रक्षा का मूल्य चुकाएगा (घूसखोरी होगी)। श्रम का रुपये-पैसे में मूल्य आँकना असंभव है। .....श्रम और पारिश्रमिक दोनों का अर्थशास्त्र के क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध होने पर भी व्यवहार जगत् के लिए सर्वमान्य एवं सर्वकष मूल्य सिद्धांत निश्चित करना न तो सरल है और न उपादेय ही। वास्तविकता तो यह है कि दोनों का मूल्यांकन पृथक मानदण्ड से होता है। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले अर्थ के कारण नहीं अपितु उसके धर्मत्व से है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके 'योगक्षेम' की व्यवस्था है।"[7]

उपाध्याय इस प्रकार के समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के हिमायती हैं जिसमें कर्म की प्रेरणा का आधार लोभवृत्ति नहीं वरन् 'कर्तव्यसुख' है। वे उस अर्थशास्त्र के खिलाफ हैं जो मानवजीवन के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं की उपेक्षा करता है।

".....व्यक्तियों की अबाध व असीम प्रतिस्पर्धा को न तो हम सामाजिक जीवन का नियामक मान सकते हैं और न सुरक्षापूर्ण ही।..... यह मान्यता 'मात्स्य न्याय' का प्रतिपादन करने वाली है। हमने इस न्याय को कभी धर्मसंगत नहीं माना। .....समाज में मानव की कुछ स्वतंत्रताओं पर मर्यादा आवश्यक

होती है। अनियंत्रित स्वतंत्रता केवल कल्पना की वस्तु है। हाँ, यह नियंत्रण जितना बाहरी होगा, मानव को कष्टदायी होगा। शिक्षा और संस्कार, दर्शन और आदर्शवाद, व्यवहार में मनुष्य को आत्मनियंत्रण सिखाते हैं।"[8]

अपनी ही गति से चलने वाले अर्थशास्त्र के हवाले समाज को नहीं किया जा सकता। अर्थचक्र को समाजशास्त्र व धर्मशास्त्र के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है। इसलिए वे कहते हैं, "अपनी ही गति से बराबर गतिमान् अर्थव्यवस्था असंभव है। उसे गति देने के लिए और बाद में भी कम-से-कम रुकावट के साथ सुचारु रूप से चलते रहने के लिए, व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रेरणा का स्रोत अर्थ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ढूँढ़ना होगा। राष्ट्र की राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ, व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा की अभिलाषा, कुटुंब का प्रेम आदि अनेक प्रेरणाएँ वांछित अर्थरचना को बनाने व टिकाने में सहायक होती है।"[9]

उपाध्याय की मान्यता है कि उपभोगवाद, स्पर्धावाद व वर्ग संघर्ष इन सबका आधार अनियंत्रित उपभोग है। "पश्चिम ने अधिकाधिक उपभोग के अपने पुराने सिद्धांत को ही चलने दिया और उसमें संशोधन की जरूरत नहीं समझी। वास्तविकता यह है कि अधिकाधिक उपभोग का सिद्धांत ही मनुष्य के दु:खों का कारण है। उपभोग की लालसा यदि पूरी की जाए तो यह बढ़ती चली जाती है। वर्गसंघर्ष, जिसके ऊपर समूचा साम्यवाद खड़ा है, ऐसे उपभोग के कारण ही उत्पन्न होता है। भारतीय मतवाद जब वर्ग संघर्ष का खंडन करता है, तब उसका तात्पर्य यही होता है कि उसने उपभोग को नियंत्रित कर लिया है तथा अधिकाधिक उपभोग की बजाय न्यूनतम उपभोग को आदर्श बनाया है। मनुष्य की प्राकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें अधिकाधिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयमित उपभोग की प्रवृत्ति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्य है। इसमें ही तीनों का संतुलन है।"[10]

साम्यवादी व पूँजीवादी विचारधाराएँ समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, विधिशास्त्र सभी को अर्थशास्त्र के हवाले कर देती है। अर्थशास्त्र की औद्योगीकरण-प्रवृत्ति ने वित्तीय सत्ता के केंद्रीकरण को पोषण प्रदान किया है। इससे मानव जीवन का ही मशीनीकरण हो गया है। उपाध्याय धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र में पारस्परिक संतुलन के हिमायती हैं। इस संतुलन कार्य को वे 'सांस्कृतिक' कार्य मानते हैं तथा इस दृष्टि से अनुकूल अर्थायाम की स्थापना के हिमायती हैं।

इस अंक के लिए मंथन को योग्य अतिथि संपादक प्राप्त हुए हैं, डॉ. अश्वनी महाजन, जो स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सह-संयोजक हैं। इस अंक की सामग्री के संयोजन में उनकी ही निर्णायक भूमिका रही है। अत: अतिथि संपादकीय में इस संयोजन को आप अच्छी तरह से जान पाएंगे। उसे अवश्य पढ़ें।

अगला अंक 'धर्मायाम विशेषांक' (अप्रैल-जून 2026) होगा। विश्वास करता हूँ यह शृंखला आपको पसंद आएगी। अपने मंतव्य से अवगत करवाते रहें। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

mahesh.chandra.sharma@live.com

संदर्भ-

1. दीनदयाल उपाध्याय, 'राष्ट्र चिंतन'; अध्याय-13: विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृ० 89
2. दीनदयाल उपाध्याय, 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा'; अध्याय-2: भारतीय संस्कृति में अर्थ, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ (1958 में प्रकाशित), पृ० 10
3. वही; पृ० 16
4. दीनदयाल उपाध्याय, 'भारतीय जनसंघ की अर्थनीति' (भारतीय जनसंघ उत्तरप्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन, 1953 के अवसर पर कार्यकर्ता शिविर के लिए भेजा गया लेख); पाञ्चजन्य, जनसंघ अधिवेशनांक, 25 जनवरी, 1954, पृ० 8
5. क्र० 2; 109
6. वही; पृ० 18
7. वही; वहीं
8. वही; पृ० 20
9. वही; पृ० 23
10. क्र० 1; अध्याय-12, अर्थनीति का भारतीयकरण, पृ० 85

लेखकों का परिचय

डॉ. अश्वनी महाजन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री हैं। आर्थिक मुद्दों पर वे विभिन्न टीवी चैनलों पर अपनी राय रखते रहते हैं। कई राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में भी लिखते रहते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के पहले श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स और बाद में लंबे समय तक पीजीडीएवी कॉलेज में अर्थशास्त्र का अध्यापन। 'पब्लिक इकोनॉमिक्स', 'मॉनेटरी इकोनॉमिक्स' और 'इंडियन इकोनॉमी' में विशेषज्ञता रखते हुए उन्होंने एक दर्जन से ज्यादा किताबें लिखी हैं और कई लब्धप्रतिष्ठ शोध पत्रिकाओं में योगदान किया है। इकोनॉमिक्स के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए, उन्हें 2019 में प्रतिष्ठित स्कॉच अवॉर्ड से भी सम्मानित किया गया। स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सह-संयोजक के तौर पर उन्होंने इकोनॉमिक पॉलिसी बदलने में अहम भूमिका निभाई है। उनके पॉलिसी में दखल में जमीन अधिग्रहण पर विवादित ऑर्डिनेंस को वापस लेना, जीएम फसलों की फील्ड ट्रायल पॉलिसी पर फिर से विचार करना, सरकार की एफडीआई पॉलिसी, खासकर रिटेल ट्रेड और ई-कॉमर्स, और रीजनल कॉम्प्रिहेंसिव इकोनॉमिक पार्टनरशिप से बाहर निकलना शामिल है, जो चीन समेत 16 देशों के बीच एक मेगा ट्रेड डील है

प्रो. मुरली मनोहर जोशी भारतीय जनता पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से एक हैं। कई बार संसद सदस्य रह चुके प्रो. जोशी केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री, केंद्रीय गृह मंत्री तथा केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री का पद भी सुशोभित कर चुके हैं। आप भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष भी रहे हैं। हिंदी में भौतिक विज्ञान का पहला शोधपत्र प्रकाशित करने का गौरव भी प्रो. जोशी को प्राप्त है। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के आचार्य रहे हैं।

डॉ. कृष्ण गोपाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह हैं। वैचारिक और संगठन दोनों ही दृष्टियों से संघ की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाते हुए वे सामाजिक व सांस्कृतिक विषयों पर संघ की दृष्टि के प्रखर प्रस्तोता हैं। आप भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए विकास के ऐसे प्रारूप के पक्षधर हैं जो परंपरागत मूल्यों के संरक्षण के साथ साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन भी करे। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में युवाओं की भूमिका पर कई अकादमिक व्याख्यान और लोकप्रिय भाषण भी दे चुके हैं।

नरेश सिरोही देश की विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित किसान संगठनों के बीच अपनी खास पहचान रखते हैं। विगत 37 वर्षों से किसान संगठनों में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। भाजपा किसान मोर्चा के राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष, राष्ट्रीय महामंत्री, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रहें हैं। वे भारत सरकार में दूरदर्शन किसान चैनल के संस्थापक सलाहकार, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के फसल प्रणाली अनुसंधान परियोजना निदेशालय, मोदीपुरम मेरठ तथा भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान मोदीपुरम मेरठ के साक्षी मंडल एवं अनुसंधान सलाहकार समिति के सदस्य सहित के विभिन्न दायित्व पर रहते हुए वर्तमान भारतीय कृषि पद्धतियों और कृषि नीतियों में व्यापक सुधारों के माध्यम से प्रकृति प्रदत्त सनातन वैदिक कृषि परंपरा के सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित सनातन कृषि परंपरा और किसानों को स्वावलंबी और आर्थिक रूप से सबल बनाने के लिए प्रयासरत हैं। इन्होंने अटल सरकार में किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड, समन्वित कृषि प्रणाली के मॉडल तैयार कराने तथा मोदी सरकार के दौरान पूरी तरह किसानों को समर्पित 24x7 दूरदर्शन किसान चैनल तथा भारतीय देसी गोवंश के संरक्षण व संवर्धन के लिए रोड मैप की संकल्पना तैयार करने एवं इन सभी संकल्पनाओं के क्रियान्वयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

डॉ. पी. कनकसभापति को भारत पर आधारित अपने वास्तविक अध्ययन के लिए जाना जाता है, जो लोगों के नजरिए से की जाती हैं। उनके अध्ययनों से पता चलता है कि हमारी सांस्कृतिक बुनियाद पर आधारित खास भारतीय मॉडल कैसे काम करते हैं और अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाते हैं। वे तमिल और अंग्रेजी में लिखते हैं। उनकी एक कृति का उपयोग कई विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हुआ है। वे राष्ट्रीय और राज्य स्तर कई विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों से जुड़े रहे हैं। इससे पहले वे आइसीएसएसआर, नई दिल्ली के चेयरमैन थे। अभी वे भाजपा - तमिलनाडु के राज्य उपाध्यक्ष और डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली के सेक्रेटरी और ट्रस्टी हैं।

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा अर्थविद होने के साथ ही प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों के विशेषज्ञ भी हैं। वे गौतमबुद्ध विश्वविद्यालय, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कुलपति हैं। वे भारत सोलर पॉवर डेवलपमेंट फोरम के संयोजक और स्वदेशी जागरण मंच के सहसंयोजक हैं।
संपर्क: bpsharma131@yahoo.co.in, Mob: 9829243459

प्रो. जवाहरलाल बाल्यकाल से ही आश्रम में रहकर प्रथमा से एम. ए. पर्यन्त की शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय से संपन्न की। वहीं संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय से पीएच. डी. की उपाधि वर्ष 2002 में प्राप्त की। एक वर्ष छत्तीसगढ के स्कूल में अध्यापन करने के बाद वर्ष 2004 से श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय में सहायक आचार्य के रूप में नियुक्ति तथा वर्ष 2016 में सहाचार्य एवं वर्ष 2019 से प्रोफेसर के रूप में सेवाएँ दे रहे हैं। अभी तक लगभग 40 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित। 60 से अधिक राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में पत्र वाचन। 4 पुस्तकें प्रकाशित हैं, 3 पुस्तकों पर कार्य कर रहे हैं। अब तक देश के विविध विश्वविद्यालयों की विभिन्न समितियों में सदस्य के रूप में भी कार्य करने का अनुभव है। वर्तमान में विभागाध्यक्ष, सर्वदर्शन विभाग के रूप में कार्य कर रहे हैं।

सजी नारायणन कई दशकों से भारतीय मजदूर संघ से जुड़े रहे हैं और इसके पूर्व अध्यक्ष के तौर पर काम कर चुके हैं। वे इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन और बीएमएस के इंटरनेशनल मामलों के प्रभारी थे, और वे जी 20 की प्रक्रिया के हिस्से के तौर पर भारत में हुए एल 20 के मुख्य संयोजकों में से एक थे। वे दूसरे नेशनल कमीशन ऑन लेबर के सदस्य थे, और उन्होंने नेशनल ज्यूडिशियल एकेडमी, भोपाल में फैकल्टी रिसोर्स पर्सन के तौर पर भी काम किया है। उन्होंने कानून की पंद्रह से ज्यादा किताबें लिखी हैं, जिनमें लेबर लॉ, फैमिली कोर्ट लॉ, शादी और तलाक, जमीन सुधार, और सिविल प्रोसीजर कोड जैसे विषय शामिल हैं। कई तरह के विषयों पर 250 से ज्यादा लेख प्रकाशित हैं। पेशे से वे एक वकील हैं और उन्होंने केरल के त्रिशूर बार एसोसिएशन के प्रेसिडेंट के तौर पर काम किया है।

अतिथि संपादकीय

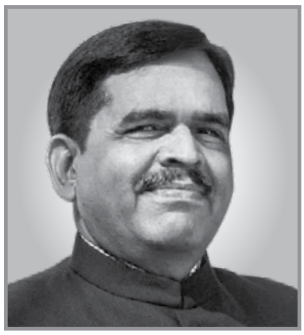

प्रो. अश्वनी महाजन

औद्योगिक क्रांति के पहले से औद्योगिक राष्ट्र है भारत

पिछले लंबे समय से विकास की अंधी दौड़ में व्यक्ति, समाज और सृष्टि का अंतरंग संबंध, नीतिगत ही नहीं, बौद्धिक विमर्श में भी कहीं पिछड़ता जा रहा है। उसका स्वभाविक परिणाम है, प्रकृति का क्षरण, पर्यावरणीय संकट, आय और संपत्ति में बढ़ती असमानताओं के कारण गरीबी, विषमता, अपराध और मूल्यों का क्षरण। आज दुनिया विकास के इन दुष्परिणामों से जूझती हुई विकल्पों को तलाशने का प्रयास कर रही है, लेकिन हम वर्तमान संकटों का हल जब वर्तमान में ही परिणाम के मॉडल में ही ढूंढने का प्रयास करते हैं तो कोई रास्ता सूझता नहीं है। जब हम विकास को अधिकाधिक उत्पादन, अधिकाधिक ऊर्जा की खपत और अधिकाधिक उपभोग, अधिक और नई से नई प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन और उपयोग, प्रकृति के अधिकाधिक व्यावसायिक इस्तेमाल, चाहे उससे उसका क्षरण ही क्यों न हो रहा हो, के साथ जोड़ कर देखते हैं तो मानवता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता दिखाई दे रहा है। औद्योगीकरण के समय से अभी तक दुनिया का तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ चुका है और चिंता इस बात की है कि 2050 तक क्या इस वृद्धि को हम 2.00 डिग्री तक सीमित रख पाएंगे। दुनिया भर के देश 'नेट जीरो' के अपने-अपने लक्ष्य दे रहे हैं। विभिन्न देशों के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अलग-अलग समय सीमा तय की गई है। भारत द्वारा तय किया गया है कि वर्ष 2070 तक वह 'नेट जीरो' के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

उधर या तो नदियाँ विलुप्त हो रही हैं या उनमें प्रदूषण और गंदगी उनके अस्तित्व और उपयोग पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं। पिघलते ग्लेशियर, पर्वतों में भू-स्खलन, बदलता मौसम, अति और अल्प वृष्टि, लगातार बढ़ना समुद्र का जलस्तर, हर क्षण मानवता के अस्तित्व के लिए खतरे की घंटी जैसे हैं।

पिछले लगभग 200 वर्षों के औद्योगीकरण और तथाकथित आर्थिक विकास, जिसके कारण जीडीपी तो लगातार बढ़ती दिखाई दे रही है, लेकिन सृष्टि का विनाश उसकी स्वाभाविक परिणति के रूप में दिखाई दे रहा है।

दुनिया इस विकास के मॉडल के दुष्परिणामों से अनभिज्ञ नहीं है, और मानवता को बचाने के प्रयास भी जारी हैं। पिछले 30 वर्षों से हो रहे, हर वर्ष कॉप सम्मेलन में पर्यावरणीय संकटों और ग्लोबल वार्मिंग और मौसम परिवर्तनों से निपटने हेतु लगातार बातचीत और अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर केंद्रित चर्चाएँ जारी हैं, लेकिन दुनिया किसी हल की ओर बढ़ी हो, ऐसा दिखाई नहीं दे रहा।

तथाकथित प्रथम औद्योगिक क्रांति से कहीं पहले से ही, भारत शायद दुनिया का एकमात्र औद्योगिक राष्ट्र था। रसायन, वस्त्र, हस्तशिल्प एवं धातु उद्योग, जहाज निर्माण, चिकित्सा, भवन निर्माण एवं वास्तुकला ही नहीं बल्कि शिक्षा, शोध, योग, दर्शन एवं विज्ञान सहित विभिन्न क्षेत्रों में भारत की उत्कृष्टता के प्रमाण भारत में मिलते हैं। भारत ज्ञान, व्यापार, विज्ञान, कृषि, उद्योग और संस्कृति का केंद्र बना रहा। जाने-माने आर्थिक इतिहासकार एंगस मेडिसन लिखते हैं कि ईसा के जन्म से 15वीं शताब्दी तक दुनिया की जीडीपी का 30 से 35 प्रतिशत भारत पैदा करता था। लेकिन पर्यावरणीय संतुलन भारत के विकास की प्रमुख विशेषता रही। मानवता के लिए किसी प्रकार का संकट उसके कारण हुआ हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि भारत की सनातन परंपराएँ और उसके पीछे का मूल दर्शन, प्रकृति के साथ एकात्मकता का चिंतन और प्राणी मात्र के प्रति संवदेना के भाव के कारण विकास के उच्चतम लक्ष्यों को प्राप्त करने के बाद भी पर्यावरण को किसी भी

प्रकार की हानि नहीं हो पाई।

आवश्यकता इस बात की है कि विकास के वर्तमान मॉडल से अलग इस बात पर विचार हो कि क्या भारतीय चिंतन से पश्चिम के विकास के मॉडल से उत्पन्न समस्याओं का समाधान निकल सकता है? इन्हीं विषयों पर विचार करने हेतु आर्थिक क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक आदरणीय डॉ. मोहन भागवत, आदरणीय सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबोले, आदरणीय सह सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभिन्न पदाधिकारियों के साथ अर्थशास्त्रियों, शिक्षाविदों, विचारकों, उद्योग और व्यापार जगत से जुड़े महानुभावों, भारत सरकार के पूर्व अफसरों सहित विभिन्न विशेषज्ञों ने भाग लिया। उसी चर्चा में से निकले विचारों एवं अर्थयाम से सम्बंधित अन्य बुद्धिजीवियों के विचारों को को समाहित करने का प्रयास मंथन के इस 'अर्थायाम' विषेषांक में हुआ है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने अत्यंत प्रभावी ढंग से यह बताया है कि भारतीय चिंतन में जो चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष बताए गए हैं, अर्थ, धर्म के प्रकाश एवं उसके निर्देशन में ही काम करे, यह विचार किया गया है। न तो अर्थ का अभाव और न ही अर्थ का प्रभाव सही है। कोई भूखा न रहे, उपभोग त्यागमयी हो और उपभोग में संयम हो। भारत के चिंतन में यह स्थापित है कि समस्त ब्रह्मांड एकात्म है और सारी धरती एक कुटुंब ही है। वर्तमान विकास के मॉडल से उत्पन्न समस्याओं का समाधान भारत की सनातन परंपराओं और उनके पीछे के मूल दर्शन एवं मान्यताओं से निकल सकता है। अर्थायाम समाज के अधिकांश क्षेत्रों को प्रभावित करता है, इसलिए समाधान की ओर आगे बढ़ने हेतु समग्र आर्थिक तंत्र, ग्रामीण लघु-कुटीर उद्योगों सहित समस्त उद्योग, कृषि, स्ट्रीट वेंडर सहित छोटे-बड़े व्यापारी, प्रौद्योगिकी, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के बारे में एकसाथ विचार करते हैं तो ध्यान में आता है कि अपने देश का सनातन विचार चार पुरुषार्थों के आलोक में एक स्पष्टता देता है कि धन का अर्जन और धन का नियोजन, विनियोग आदि सब सत्यनिष्ठा और प्रामाणिकता के साथ तथा लोकमंगल भावनाओं को ध्यान में रखकर हो, यही हमारी सनातन परंपरा का अंग है। सामान्य भारतीय या हिंदू आर्थिक दर्शन सभी का कुशल-क्षेम सुनिश्चित करता है। जहाँ पश्चिमी देशों में गरीबों/वंचितों के लिए सामाजिक सुरक्षा, सरकारी नीति के रूप में प्रस्तुत की जाती है, भारतीय विचार इसे एक सहज मानवीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत करता है। दौलत को महिमामंडित करने को एक अपराध के रूप में देखा जाता है। समस्त मानवता एकात्म हैद्य केवल मानवता ही नहीं, समस्त ब्रह्मांड एकात्म है।

संघ में, यह विचार कि हम मातृभूमि के पुत्र हैं और इसके परम वैभव के लिए हम सब न्यौछावर करने की भावना रखते हैं, इसके साथ अपना सनातन विचार एकात्म बोध और विश्व कल्याण का है। भारत के बारे में ऐसे विमर्श गढ़े गए कि भारत के लोग अकर्मण्य हैं, गरीब हैं, निरक्षर हैं, अनुशासनहीन हैं और मिलकर नहीं चल सकते। लेकिन अनेक यूरोपीय लेखकों ने ही इस बात का दृढ़ता से खंडन किया है और भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न क्षेत्रों में अतुलनीय प्रगति का लेखा-जोखा दिया है। ऐसे कई उदाहरण डॉ. कृष्ण गोपाल के उद्बोधन में हमें प्राप्त होते हैं।

लेकिन वर्तमान समय में आय और संपत्ति की असमानताएँ, पर्यावरणीय प्रदूषण, गाँवों से शहरों की ओर पलायन और वहाँ का अमानवीय जीवन, प्रौद्योगिकी विकास के नाम पर रोजगार का क्षरण, ये सब हमें सोचने के लिए बाध्य कर रहा हैं कि कहीं न कहीं हमारा वर्तमान का मार्ग सही नहीं है।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी के उद्बोधन में यह बात स्पष्ट होती है कि विश्व आज पर्यावरणीय संकटों से गुजर रहा है। हजारों सालों से विकसित हो रहे ग्लेशियर लगातार पिघल रहे हैं, जीवनदायिनी नदियों में प्रदूषण बढ़ रहा है और जल कम हो रहा है। हिमालय और उसके कारण हमारा अस्तित्व खतरे में है। 2024 दुनिया का सबसे अधिक गर्म वर्ष रिकॉर्ड किया गया है। समुद्र गर्म हो रहे हैं और उनका जल स्तर बढ़ता जा रहा है। औद्योगिक क्रांति से पहले बहुत कम ऊर्जा का उपयोग होता था और पिछले समय में इसमें भारी वृद्धि हुई है। जहाँ पर्यटन विकास के नाम पर निर्माण हो रहा है, वहीं अब बड़ी संख्या में पर्यटक भू-स्खलन के कारण फँस रहे हैं और हिमालय में विनाशकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। एक ओर जीडीपी ग्रोथ लगातार बढ़ रही है, प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हो रही है लेकिन साथ ही नैतिकता, मूल्यों, सत्य, सम्मान, न्याय आदि सभी में क्षरण भी दिखाई दे रहा है। आज यदि इस संकट से बचा जा सकता है तो उसका उत्तर एकात्म मानववाद में है, जो यह स्थापित करता है

कि ब्रह्मांड एक परिपूर्ण ईकाई है। जिसको टुकड़ों में नहीं बाटा जा सकता। विश्व किसी मशीन की भांति नहीं बनाया गया, यह सहज रूप से विकसित हुआ है। जहाँ पश्चिम का विचार ब्रह्मांड को एक मशीन मानता है, वहीं एकात्म मानव दर्शन इसे सृष्टि की यांत्रिक अवधारणा के स्थान पर जैविक अवधारणा के रूप में देखता है है। यह विचार खंड दृष्टि का विरोध करता है और यह मानता है कि समस्त प्राणी मात्र सहजीवी है और इस परस्पर जीवन में शोषण का कोई स्थान नहीं हो सकता। जहाँ पश्चिम का विचार आत्म-विनाशकारी है, भारत का एकात्म मानव दर्शन का विचार आत्म-रचनात्मक आत्म-पुनर्जननशील है।

आज दुनिया में ग्रोथ के स्थान पर डी-ग्रोथ की चर्चा हो रही है। आज सब के ध्यान में आ रहा है कि प्रकृति के पास सीमित संसाधन है, इसलिए संयमित उपभोग, सहभाजन और सादगी में ही सबके लिए खुशी प्राप्त हो सकती है।

बैठक के अंत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने कहा कि हमारा जो मूल दर्शन है, एकात्म मानव दर्शन, उसके बारे में कोई तर्क-वितर्क और कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यही हमारे दर्शन का मूल आधार है। उन्होंने आगे कहा, ''गत दो हजार वर्षों में दुनिया ने अपने मूल को जोड़ने वाले तत्त्व को लगभग भुला दिया है। आज विश्व एक अधूरे आधार पर खड़ा है। शरीर, मन और बुद्धि की चर्चा तो होती है, पर इन्हें जोड़ने वाली आत्मा की समझ लुप्त हो गई है। अर्थ, काम और मोक्ष की बात होती है, लेकिन इन सबको संतुलित और सुव्यवस्थित करने वाला धर्म पीछे छूट गया है। इस जोड़ने वाले तत्त्व को भुलाकर ही दुनिया आगे बढ़ी है। परिणाम यह हुआ कि पुरानी समस्याओं के समाधान तो नहीं मिले, उलटे नई-नई समस्याएँ खड़ी हो गई। अधूरे आधार पर खड़ी यह व्यवस्था स्वाभाविक रूप से अधूरी रह गई- और यही उसकी असफलता है।''

कई बार ऐसी प्रतिक्रिया आती है कि हम दुनिया की सोच को नहीं बदल सकते। लेकिन पिछले 100 वर्षों की यात्रा में धैर्य, आत्मविश्वास और प्रतिबद्धता से स्वयंसेवकों ने सत्य के मार्ग पर चलकर समाज के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। आज जब एक बात स्पष्ट हो चुकी है कि जो प्रचलित पद्धति है, उसमें समाधान नहीं है, उस पद्धति के मूल तत्त्व में ही अधूरापन है, अब यह बात सभी स्वीकार करते हैं।

बदलाव के लिए जनमानस का प्रबोधन अत्यंत आवश्यक है। समाज में बदलाव के लिए आज कई सफल प्रयोग हुए हैं। ये प्रयोग सेवा कार्यों, ग्राम विकास ही नहीं, शिक्षा और रोजगार सहित कई अन्य क्षेत्रों में भी हुए हैं। हमें नए प्रयोग करने होंगे, अधिक मॉडल खड़े करने होंगे, उनका दस्तावेजीकरण करना होगा और आउटरीच बढ़ानी होगी। समझना होगा कि यह रास्ता सीधी रेखा में नहीं है। मन में पूर्ण विश्वास के साथ अपने आचरण से पुष्ट करते हुए, समाज के सामने मॉडल खड़े करते हुए, लगातार कदम बढ़ाने होंगे। समाज परिवर्तन से ही व्यवस्था परिवर्तन होगा।

प्रो. अश्वनी महाजन

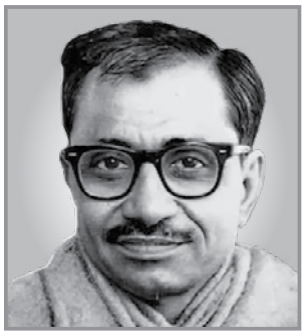

पं. दीनदयाल उपाध्याय

एकात्म मानववाद अर्थायाम

(गत वर्ष एकात्म मानववाद की हीरक जयंती (60वां) का वर्ष था। 1965 में विजयवाड़ा भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में 'एकात्म मानववाद' आधिकारिक रूप से स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात 22, 23, 24 व 25 अप्रैल 1965 को मुंबई में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' विषय पर चार व्याख्यान दिए। दिनांक 25 अप्रैल का अंतिम व्याख्यान का विषय 'अर्थायाम' था। उनका वह ऐतिहासिक भाषण ही यहाँ आलेख रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है)

हमारी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य अमर्याद नहीं, संयमित उपभोग होना चाहिए। गहन चिंतन से उद्‌भूत समग्र विश्लेषण

कल हम लोगों ने राष्ट्र के विषय में कुछ विचार किया था। हमारी परंपरा के अनुसार राष्ट्र एक स्वयंभू, सावयव तथा जीवमान सत्ता है। राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अपनी मूलभूत प्रकृति के आविष्करण के लिए, अनेक संस्थाओं को जन्म देता है। उन संस्थाओं में से राज्य एक संस्था है, जो महत्त्व की है किंतु सर्वोपरि नहीं। प्राचीन साहित्य में कहीं-कहीं जहाँ राजा का वर्णन किया गया है और राज्य धर्म का उसको उपदेश दिया गया है, वहाँ उसे अत्यंत महत्त्वशाली अवश्य बताया गया है। वह शायद इसलिए कि उसे अपने कर्तव्य का भान रहे, अपने दायित्व की जानकारी हो। वह संपूर्ण समाज जीवन के ऊपर प्रभाव डालने वाला व्यक्ति है। उसे अपने ऊपर पूरा ध्यान देना चाहिए। महाभारत में भीष्म ने यही बात कही। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि 'राजा काल का कारण है अथवा काल राजा का कारण', कहा कि राजा ही काल का कारण है। अब इसमें से कुछ लोग यह निष्कर्ष निकाल देते हैं कि उन्होंने राजा को ही सर्वोपरि माना है। परंतु यह बात सत्य नहीं है। भीष्म ने राजा को इतना महत्त्व देते हुए भी विधि से ऊपर नहीं बताया। राजा का प्रभाव होता है, यह सत्य है और राजा समाज में धर्म रहे, इस बात को देखने की जिम्मेदारी लेकर चलता है, यह भी सत्य है, किंतु राजा धर्म का निर्माण करने वाला नहीं होता। धर्म का लोग पालन करें, यही बात वह देखने वाला है। यानी एक प्रकार से कहा जाए तो राजा का स्थान आज के समय में जितना कार्यपालिका का होता है, उतना ही है।

जिम्मेदारी कार्यपालिका की

कार्यपालिका आज भी कानून नहीं बनाती, परंतु राज्य ठीक प्रकार से चले, वह जिम्मेदारी कार्यपालिका पर होती है। अगर कार्यपालिका ठीक न चले तो कानून की जैसी धज्जियाँ उड़ती हैं, वह आज हम अच्छी तरह से देख रहे हैं। आज भी हम कह सकते हैं कि 'कार्यपालिका कालस्य कारणं' कि आज जो बुराइयाँ चल रही हैं, उसमें कार्यपालिका की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आखिर नशाबंदी क्यों फेल हो गई है? यहाँ उसके लिए कौन जिम्मेदार है? जिन लोगों पर इस बात का दायित्व डाला गया कि नशाबंदी के कार्यक्रम को सफल बनाओ, जब उन्होंने ही हफ्ता लेना शुरू कर दिया तो नशाबंदी चलेगी कहाँ से? उसके लिए जिम्मेदारी कार्यपालिका पर आती है और इसी जिम्मेदारी के रूप में भीष्म की उपर्युक्त उक्ति है। उसमें से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमने राजा को ही सर्वप्रभुतासंपन्न माना है, गलत होगा। अगर इतना किया होता तो फिर अत्याचारी राजा वेण को सिंहासन से हटाकर फिर से पृथु को गद्दी पर बिठाने का काम ऋषियों ने न किया होता। ऋषियों के इस कार्य को किसी भी शास्त्र ने किसी भी इतिहास ने बुरा नहीं कहा, बल्कि अच्छा ही कहा। धर्म की प्रभुता स्वीकार करने पर ही ऋषियों को अधर्मी राजा को हटाने का अधिकार प्राप्त होता है। अन्यथा राजा को हटाना अवैध माना जाता। यदि राजा अपने कर्तव्य का पालन न करे तो राजा को हटाना धर्म है।

किंतु पश्चिम में एक राजा को दूसरे राजा ने संघर्ष करके हटाया या जनता ने उस समय हटाया, जब उन्होंने तत्त्वत: राजपद्धति को अमान्य कर दिया। वहाँ राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है और किसी भी परिस्थिति में नहीं हटाया जा सकता।

समाज व्यवस्था में अनेक संस्थाएँ

राजा या राज्य सर्वोपरि तो है ही नहीं। वह एकमेव संस्था भी नहीं है। समाज की व्यवस्था तथा उसके जीवन का नियमन करने वाली, समाज की व्यवस्था देखने वाली अनेक संस्थाएँ हैं। उनका होरिजोंटल ऐंड वर्टिकल अर्थात् प्रादेशिक और व्यावसायिक दोनों आधारों पर गठन हुआ है। पंचायतें और जनपदसभाएँ हमारे यहाँ रही हैं। बड़े-से-बड़े चक्रवर्ती सार्वभौम राजा ने भी कभी पंचायतों को समाप्त नहीं किया। इसी प्रकार व्यावसायिक संगठन भी रहे हैं। उन्हें भी किसी ने समाप्त नहीं किया अपितु उनकी स्वायत्तता को स्वीकार किया गया। अपने-अपने क्षेत्र में उन्होंने नियम बनाए। जाति की पंचायतें, श्रेणियाँ, पूग, निगम, ग्राम पंचायतें, जनपदसभाएँ आदि संस्थाएँ नियम बनाती थीं। राज्य का काम यही था कि उन नियमों का पालन होता है कि नहीं यह देखे। राज्य ने कभी उनके मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। इस प्रकार हमारे यहाँ राज्य तो जीवन के थोड़े से हिस्से को ही छूता था।

इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी अनेक संस्थाएँ जन्म लेती हैं। इस दृष्टि से हमें आज कुछ अर्थव्यवस्था का भी विचार करना पड़ेगा। अर्थव्यवस्था कैसी हो? हमें ऐसी व्यवस्था चाहिए, जो हमारे मानवत्व को विकसित कर सके, हमारे मानवत्व को समाप्त न करे; उसके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव न डाले और जिसके द्वारा हम मानव से ऊँचे उठकर देवत्व को प्राप्त कर सकें। क्योंकि हमारे यहाँ पर मानव जीवन का पूर्ण विकास; उनका देवत्व के रूप में आविर्भाव ही माना गया है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अर्थव्यवस्था की क्या मर्यादाएँ होनी चाहिए? इसका विचार करें।

अर्थव्यवस्था की मर्यादाएँ

लोगों के भरण-पोषण के लिए, जीवन के विकास के लिए और राष्ट्र की धारणा और विकास के लिए जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए। न्यूनतम मर्यादा के बाद और अधिक समृद्धि और सुख के लिए अर्थोत्पादन करना चाहिए या नहीं, यह स्वाभाविक प्रश्न पैदा होता है। पश्चिम का अर्थशास्त्र तो इच्छाओं को बराबर बढ़ाते जाना और उनकी आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति करना ही अभीष्ट समझता है। इस विषय में उसकी कोई अधिकतम की मर्यादा नहीं है। सामान्यतया तो पहले इच्छा होती है और फिर उसकी पूर्ति के साधन जुटाए जाते हैं। किंतु अब तो हालत यह आ गई है कि जो कुछ पैदा किया जाता है, उसका उपभोग हो, इसके लिए लोगों में इच्छा पैदा की जाती है। बाजार के लिए माल पैदा करने के स्थान पर, पैदा किए हुए माल के लिए बाजार ढूँढ़ना, न मिले तो पैदा करना आज की अर्थनीति का प्रमुख अंग बन गया है। प्रारंभ में उत्पादन उपभोग का अनुसरण करता था। अब उपभोग उत्पादन का अनुचर है। हम चाय का ही उदाहरण लें। चाय की माँग थी, इसलिए चाय नहीं पैदा की गई। किंतु चाय पैदा की गई और इसलिए हमें पीनी सिखाई गई। हम अब चाय पीते हैं। वह हमारे जीवन का अंग बन गई है। इसी प्रकार हम आजकल वनस्पति तेल का

उपयोग कर रहे हैं। क्या हमने कभी इसकी माँग की थी? वास्तव में वनस्पति तेल पैदा किया गया और फिर हमें उसका उपयोग सिखाया गया। जो कुछ पैदा होता है, यदि उसका उपभोग न करें तो वहाँ पर मंदी आ जाएगी। सन् 1930-32 का मंदी[1] का जमाना हमें याद होगा। उस समय माल तो था, पर उसकी खपत नहीं थी। इसलिए धड़ाधड़ कारखाने बंद होते जाते थे। दिवाले निकल रहे थे तथा बेकारी बढ़ती जाती थी। इसलिए आज महत्त्व की वस्तु यह हो गई है कि पैदा माल की खपत हो जाए।

अंग्रेजी के साप्ताहिक *ऑर्गनाइजर* के संपादक कुछ वर्ष पूर्व अमरीका गए थे। वहाँ से लौटने के बाद उन्होंने एक मजेदार घटना बताई। वहाँ आलू छीलने का चाकू बनाने का एक कारखाना है। उस कारखाने का उत्पादन इतना बढ़ गया कि लोगों की आवश्यकता से ज्यादा पैदा करने लगा। अत: प्रश्न हुआ कि लोग यह चाकू अधिक संख्या में खरीदें, इसका कोई तरीका ढूँढ़ा जाए। कारखाने के सेल्समैनों की बैठक हुई। एक सुझाव रखा गया कि यदि चाकू के बेंट का रंग आलू के छिलके जैसा ही बनाया जाए तो आलू छीलने के बाद छिलके के साथ चाकू को भी कूड़े की टोकरी में फेंकने की संभावना बढ़ जाएगी। इस प्रकार माल की अधिक खपत होगी। चाकू को आकर्षक बनाने के लिए सुंदर पैकिंग की भी व्यवस्था की गई। अब यह अर्थव्यवस्था उपभोग प्रधान न होकर विनाशोन्मुख है। पुराना फेंको और नया खरीदो। नया खरीदने की चाह उपभोक्ता में पैदा करना, माँग पूरी करना नहीं; माँग पैदा करना, यही आज अर्थव्यवस्था का लक्ष्य हो गया है।

प्रकृति की मर्यादा न भूलें

किंतु उत्पादन का संबंध प्राकृतिक साधनों से भी है। यदि अंधाधुंध उत्पादन बढ़ाते गए तो ये प्राकृतिक साधन कब तक साथ देंगे? कुछ लोग यह कहकर समाधान कर देते हैं कि यदि एक प्रकार के साधन समाप्त हो गए तो दूसरी प्रकार की वस्तुओं की खोज हो जाएगी। नए-नए सब्स्टीट्यूट ढूँढ़े जा सकते हैं। उनके इस तर्क में निहित बल को स्वीकार करने के बाद भी यह कहना पड़ेगा

कि प्रकृति की संपदा अपार होने पर भी उसकी मर्यादा है। यदि बड़ी तेजी के साथ और अनावश्यक रूप से हम उसका खर्च करते गए तो एक दिन हमें पछताना पड़ेगा।

प्रकृति से उच्छृंखलता

प्रकृति की संपदा की मर्यादा की चिंता न भी करें तो कम-से-कम इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि प्रकृति में विभिन्न वस्तुओं के बीच एक परस्परावलंबी संबंध है। एक-दूसरे के सहारे खड़ी तीन लकड़ियों में से यदि हम एक की स्थिति में परिवर्तन कर दें तो शेष दो अपने आप गिर जाएँगी।

आज की अर्थव्यवस्था और उत्पादन की पद्धति इस इक्विलिब्रियम को बड़ी तेजी से बिगाड़ती जा रही है। परिणामत: जहाँ एक ओर हम नई-नई इच्छाओं की पूर्ति के लिए नए-नए साधन ढूँढ़ रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर नए-नए प्रश्न हमारी संपूर्ण सभ्यता और मानवता को समाप्त करने के लिए पैदा होते जा रहे हैं। हम प्रकृति से उतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पुन: पूरित कर लें। पेड़ से फल लेने में उसकी हानि नहीं होती, लाभ होता है। पर भूमि से अधिक फसल लेने के लोभ में हम ऐसे उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं, जिनसे कुछ दिनों के बाद उसकी उत्पादन शक्ति समाप्त हो जाती है। आज अमरीका में लाखों एकड़ भूमि इस प्रकार की खेती के कारण ऊसर हो चुकी है। यह विनाशलीला कब तक चलती रहेगी?

कारखानेदार मशीन आदि के लिए (डेप्रिशिएशन फंड) घिसाई निधि की व्यवस्था करता है। परंतु प्रकृति के इस कारखाने के लिए हम किसी भी डेप्रिशिएशन फंड की चिंता न करें, यह कैसे हो सकता है? इस दृष्टि से विचार किया जाए तो कहना होगा कि हमारी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य अमर्याद उपभोग नहीं, अपितु संयमित उपभोग होना चाहिए। सोद्देश्य, सुखी, विकासमान जीवन के लिए जिन भौतिक साधनों की आवश्यकता है, वे अवश्य ही प्राप्त होने चाहिए। भगवान् की सृष्टि का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि उतनी व्यवस्था उसने की है। किंतु जब हम यह समझकर कि भगवान ने मनुष्य को केवल उपभोगप्रवण प्राणी बनाया है और

अर्थव्यवस्था का यह मानवी उद्देश्य रहा तो आर्थिक प्रश्नों की ओर देखने की हमारी दृष्टि बदल जाएगी। पश्चिम की अर्थव्यवस्था में वह पूँजीवादी हो या समाजवादी वैल्यू को अत्यंत महत्त्व का एवं केंद्रीय स्थान प्राप्त है। उसके चारों ओर ही संपूर्ण आर्थिक विचार चक्कर लगाता रहता है। एक नैयायिक की दृष्टि से 'मूल्य' संबंधी विश्लेषण का चाहे जो महत्त्व हो, किंतु उसके आधार पर जो जीवन दर्शन बने हैं, वे बहुत ही अधूरे, अमानवीय एवं कुछ अंशों में नीति विहीन भी हैं

उसके लिए अंधाधुंध उपभोग के लिए ही अपनी संपूर्ण शक्ति ख़र्च करे तो यह ठीक नहीं। इंजन को चलाने के लिए कोयला चाहिए। किंतु कोयला खाने के लिए इंजन नहीं बनाया गया। प्रत्युत हमारा प्रयत्न ही यही रहता है कि कम-से-कम ईंधन से ज्यादा-से-ज्यादा शक्ति कैसे पैदा हो, यह इकोनॉमिक दृष्टिकोण है। मानव जीवन के उद्देश्य का विचार करके हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे वह न्यूनतम ईंधन से अधिकतम गति के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके। यह अर्थव्यवस्था मानवी होगी। यह मानव के एक पहलू का विचार न कर उसके पूर्ण जीवन का तथा अंतिम उद्देश्य का विचार करेगी। यह संहारात्मक न होकर सृजनात्मक होगी। यह प्रकृति के शोषण पर निर्भर न रहकर उसके पोषण पर निर्भर रहेगी। शोषण नहीं, दोहन हमारा आधार होना चाहिए या प्रकृति का स्तन्य हमारे लिए जीवनदायी हो, यही व्यवस्था करनी चाहिए।

पश्चिम के आर्थिक नारे घातक

अर्थव्यवस्था का यह मानवी उद्देश्य रहा तो आर्थिक प्रश्नों की ओर देखने की हमारी दृष्टि बदल जाएगी। पश्चिम की अर्थव्यवस्था में वह पूँजीवादी हो या समाजवादी वैल्यू को अत्यंत महत्त्व का एवं केंद्रीय स्थान प्राप्त है। उसके चारों ओर ही संपूर्ण आर्थिक विचार चक्कर लगाता रहता है। एक नैयायिक की दृष्टि से 'मूल्य' संबंधी विश्लेषण का चाहे जो महत्त्व हो, किंतु उसके आधार पर जो जीवन दर्शन बने हैं, वे बहुत ही अधूरे, अमानवीय एवं कुछ अंशों में नीति विहीन भी हैं। एक उदाहरण लें। आजकल एक नारा लगया जाता है 'कमाने वाला खाएगा'। सामान्यतया तो यह नारा कम्युनिस्ट लगाते हैं किंतु पूँजीवादी भी इस नारे के मूल में निहित सिद्धांत से असहमत नहीं। यदि दोनों में झगड़ा है तो इसी बात का कि कौन कितना कमाता है। पूँजीवादी साहस और पूँजी को महत्त्व देते हैं और इसलिए खाने में उनका प्रमुख भाग रहा तो उसे वे उचित ही मानते हैं। दूसरी ओर कम्युनिस्ट श्रम को ही निर्माता मानते हैं। इसलिए वे श्रमिक को ही खाने का अधिकार देते हैं। ये दोनों ही विचार ठीक नहीं हैं। वास्तव में तो हमारा नारा होना चाहिए- 'कमानेवाला खिलाएगा' अथवा 'जो जन्मा सो खाएगा'। खाने का अधिकार जन्म से प्राप्त होता है। कमाने की पात्रता शिक्षा से आती है। समाज में जो कमाते नहीं, वे भी खाते हैं। बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज सबकी चिंता समाज को करनी पड़ती है। प्रत्येक समाज इस कर्तव्य का निर्वाह करता है। मानव की सामाजिकता और संस्कृति का मापदंड इस कर्तव्य के निर्वाह की तत्परता ही है। इस कर्तव्य के निर्वाह की क्षमता पैदा करना ही अर्थव्यवस्था का काम है। अर्थशास्त्र इस कर्तव्य की प्रेरणा का विचार नहीं कर पाता। काम तो मनुष्य इसलिए करता है कि वह अपने इस कर्तव्य का निर्वाह कर सके। अन्यथा जिनकी भूख मिट गई है, वे काम ही नहीं करेंगे।

न्यूनतम स्तर

मानव के नाते भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी अर्थव्यवस्था का न्यूनतम स्तर है 'रोटी, कपड़ा और मकान'। छोटे रूप में इन आवश्यकताओं की अभिव्यंजना करते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति जो समाज का आधारभूत

दायित्व है और किसी भी प्रकार के अस्वास्थ्य की दशा में व्यक्ति को स्वस्थ बनाने की व्यवस्था करना तथा उसके निर्वाह की व्यवस्था करना भी समाज का काम है। इतना कम-से-कम जिस राज्य में हो, वही धर्मराज्य है, नहीं तो अधर्म राज्य है। रघुवंश में दिलीप का वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है-

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणात् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

(प्रजा के शिक्षण, रक्षण और भरण-पोषण की व्यवस्था के कारण वही उनका वास्तविक पिता था। उनके पिता तो केवल जन्मदाता थे) जिस भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है, उसकी व्याख्या भी यही है कि 'भरणात् रक्षणात् च' अर्थात् भरण और रक्षण के कारण वह भरत कहलाता था। उसका यह देश भारत है। इस देश में भरण-पोषण की गारंटी न रही हो, 'भारत' नाम सार्थक नहीं होगा।

शिक्षा-समाज का दायित्व

बच्चे को शिक्षा देना तो समाज के अपने ही हित में है। जन्म से तो मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से तो वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो, उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उलटी बात है। कल्पना करें कि कल शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करने अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बंद कर दें। क्या समाज इस स्थिति को सहन करेगा? पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते। हम तो अपनी ओर से पूँजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का इन्वेस्टमेंट है। व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के लिए काम करेगा ही, किंतु जो व्यवस्था बचपन से ही हमें व्यक्तिवादी बनाती हो, उसमें समाज की अवहेलना करने वाले निकलें तो आश्चर्य ही क्या? भारत में सन् 1947 पूर्व सभी देशी राज्यों में शिक्षा नि:शुल्क थी। गुरुकुलों में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम में होती थी। केवल भिक्षा माँगने के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली नहीं लौटाता था। अर्थात् समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।

चिकित्सा नि:शुल्क

इसी भाँति चिकित्सा के लिए पैसा लेना पड़े, यह अचंभे की बात है। चिकित्सा भी नि:शुल्क होनी चाहिए। हमारे यहाँ पहले चिकित्सा के लिए भी पैसा नहीं लिया जाता था। आजकल तो मंदिर में जाने के लिए भी पैसा देना पड़ता है। तिरुपति में बालाजी के मंदिर के दर्शन के लिए चार आने का टिकट लेना पड़ता था। पर दोपहर में 12.00 बजे से 1.00 बजे तक 'धर्मदर्शन' होता है, अर्थात् उस समय टिकट नहीं लेना पड़ता। मानो पैसा देकर दर्शन करना 'अधर्मदर्शन' होता है। कहने का तात्पर्य है कि समाज की ओर से जीवनयापन और विकास के लिए न्यूनतम की गारंटी होनी ही चाहिए।

'न्यूनतम' का जन्मसिद्ध अधिकार

अब प्रश्न यह उठता है कि यह 'न्यूनतम' जो सभी को देना है, वह आएगा कहाँ से? स्पष्ट है कि वह हमारे प्रयत्नों से व पुरुषार्थ से ही आना चाहिए। अत: जहाँ हमें अधिकार के रूप में न्यूनतम स्तर मिला है, वहाँ उत्पादक कर्म अर्थात् पुरुषार्थ विहीन व्यक्ति समाज पर भार है। इसी प्रकार जो समाज व्यवस्था अथवा अर्थव्यवस्था लोगों के पुरुषार्थ में बाधक हो, वह आत्मघाती है। ऐसी व्यवस्था में समाज व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाएगा। पुरुषार्थ न करने के कारण व्यक्ति भी, उसकी सभी आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहीं तो भी, एकांगी रह जाएगा। मानव को पेट और हाथ दोनों मिले हैं। यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। उसका विकास नहीं होगा। नि:संतान स्त्री जैसे अपने जीवन में अधूरापन तथा व्यथा का अनुभव करती है, वैसे ही बेकार-पुरुषार्थरहित व्यक्ति अधूरा है।

प्रत्येक को काम

'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए अर्थात् स्वस्थ और सवय व्यक्ति के लिए अपनी गृहस्थाश्रम की आयु में जीविकोपार्जन की व्यवस्था होनी ही चाहिए। आज तो कुछ विचित्र ही स्थिति है। एक ओर तो दस वर्ष का बालक और सत्तर वर्ष का बूढ़ा काम में जुता हुआ है तो दूसरी ओर पच्चीस वर्ष का नौजवान बेकारी से ऊबकर आत्महत्या कर बैठता है। इस अव्यवस्था को दूर करना होगा। भगवान ने हाथ तो दिए हैं, परंतु वे स्वत: उत्पादक नहीं बन सकते। उनके लिए पूँजी का सहयोग चाहिए। श्रम और पूँजी का संबंध पुरुष और प्रकृति का संबंध है। सृष्टि इन दोनों की लीला है। इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती।

पूँजी का निर्माण

पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक है कि संपूर्ण उत्पादन का उपभोग करने के स्थान पर उसमें से कुछ बचाया जाए और उसे भावी उत्पादन के लिए काम में लिया जाए। उपभोग में संयम के बिना पूँजी नहीं बनेगी। कार्ल मार्क्स जिस 'अतिरिक्त मूल्य' की

बच्चे को शिक्षा देना तो समाज के अपने ही हित में है। जन्म से तो मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से तो वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो, उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उलटी बात है। कल्पना करें कि कल शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करने अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बंद कर दें। क्या समाज इस स्थिति को सहन करेगा? पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते। हम तो अपनी ओर से पूँजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का इन्वेस्टमेंट है

चर्चा करता है, वही पूँजी निर्माण का आधार है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उद्योगपति इस अतिरिक्त मूल्य के सहारे पूँजी निर्माण करता है। समाजवादी व्यवस्था में यह काम राज्य के द्वारा होता है। दोनों ही पद्धतियों में संपूर्ण उत्पादन का वितरण श्रमिकों में नहीं होता। यदि उत्पादन की पद्धति 'बड़े पैमाने' की ओर 'केंद्रित' रही तो पूँजी निर्माण के लिए श्रमिक के द्वारा किए गए संयम और त्याग का भी भान नहीं होता। विकेंद्रीकरण में यह लाभ है कि पूँजी के रूप में इस 'अतिरिक्त मूल्य' के प्रयोग में श्रमिक का भी हाथ रह सकता है।

मशीन का प्रभुत्व

मशीन पूँजी का एक अत्यंत महत्त्व का स्वरूप है। मानव के श्रम को सुकर बनाने तथा उसकी उत्पादकता एवं क्षमता को बढ़ाने के लिए ही यंत्र का आविष्कार हुआ है। यंत्र मानव का सहायक है, मानव का प्रतिस्पर्धी नहीं किंतु जहाँ मानव-श्रम को एक विनियम की वस्तु समझकर उसका मूल्यांकन रुपयों में होने लगा, वहाँ मशीन मानव की प्रतिस्पर्धी बन गई। यह पूँजीवादी दृष्टिकोण का दुर्गुण है। यदि मशीन मानव का स्थान लेकर उसे भूखा मारे तो वह उन उद्देश्यों के विपरीत होगा, जिनकी सिद्धि के लिए यंत्र का आविष्कार हुआ। जड़ मशीन इसके लिए दोषी नहीं। यह बुराई उस अर्थव्यवस्था की है, जिसमें साध्य-साधन विवेक लुप्त हो जाता है। हमें मशीन की मर्यादाओं का विचार करके ही उसकी उपयुक्तता का निर्धारण करना होगा। इस दृष्टि से पश्चिम की उन मशीनों का, जो वहाँ जनसंख्या की कमी के आधार पर बनी हैं, बिना विचारे आयात करना भारी भूल होगी। मशीन देशकाल परिस्थिति निरपेक्ष नहीं सापेक्ष है। विज्ञान की आधुनिकतम प्रगति की वह उपज है किंतु प्रतिनिधि नहीं। ज्ञान किसी देश-विशेष की बपौती नहीं। किंतु उसका प्रयोग प्रत्येक देश अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार करता है। हमारी मशीन हमारी आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल ही नहीं, अपितु हमारे सांस्कृतिक एवं राजनैतिक जीवनमूल्यों की पोषक नहीं तो कम-से-कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।

सात मकार (Seven 'M's.)

प्रो. विश्वेश्वरैया[2] ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि आर्थिक दृष्टि से उत्पादन प्रणाली का विचार करते समय हमें सात मकारों का विचार करना चाहिए। ये सात मकार हैं-Man (मैन), Material (मैटीरियल), Money (मनी), Managment (मैनेजमेंट), Motive Power (मोटिव पावर), Market (मार्केट), Machine (मशीन) अर्थात् काम करने वाले या जिनको काम मिलना चाहिए, उन व्यक्तियों की संख्या योग्यता तथा तंत्रज्ञता का विचार करना चाहिए। उपलब्ध अथवा जिनकी उपलब्धि संभव है, ऐसे प्रकृति के साधनों का कच्चे माल का विचार करना होगा। हमें यह भी देखना होगा कि हमारे पास कितनी पूँजी है। उस पूँजी को अधिकतम लाभ के लिए अच्छे-से-अच्छे रूप में लगाया जा सकता है। और कितना सामान्य काम चलाने के लिए हाथ में रखना आवश्यक है। हमें अपने देश की शक्ति का भी विचार करना होगा। मानव और परिश्रम के अतिरिक्त हवा, पानी, भाप, तेल, गैस, बिजली एवं अणुशक्ति सभी से मशीनें चल सकती हैं। इनमें कौन सी शक्ति कितनी मात्रा में उपलब्ध हो सकती है और हमें अनार्थिक नहीं होगी, इसका विचार करके ही उत्पादन पद्धति का निर्धारण करना होगा। इसी प्रकार प्रबंध कुशलता का विचार अत्यंत आवश्यक है। दस लोगों को एक साथ लाकर उसकी ठीक ढंग से योजना करना नहीं आया तो सब बेकार रहेगा। हम जो कुछ पैदा करते हैं, वह लोगों के उपयोग में आ सके, इसका भी विचार करना होगा। अर्थात् बाजार का विचार किए बिना किसी भी वस्तु का उत्पादन आर्थिक दृष्टि से समर्थनीय नहीं हो सकता। इन सब बातों का विचार करके हमें उपयुक्त मशीन का निर्माण करना चाहिए। किंतु होता यह है कि हम पहले 'मशीन' का खूँटा गाड़ देते हैं और फिर सभी वस्तुओं का सामंजस्य उसके साथ बिठाते हैं। किंतु दुनिया के दूसरे देशों में ऐसा नहीं हुआ। अन्यथा नई-नई मशीनें नहीं बनतीं। वास्तव में जो विज्ञान की प्रगति का लक्षण है, उसे स्थिर मानकर चलना एक अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। हम 'मशीन बाहर से मँगाते हैं, इसलिए इस विषय में हमारे यहाँ लचीलापन बहुत कम है। हमें भारतीय प्रौद्योगिकी का विकास करना होगा।'

उपर्युक्त सातों उपादानों में से कोई भी अपरिवर्तनीय नहीं। वास्तव में प्रत्येक नित्य बदलता रहता है। यह परिवर्तन विकास की दिशा में हो, उसमें कष्ट तथा विद्यमान शक्ति का छीजन कम-से-कम हो तथा उनके द्वारा हम अपने समाज के दायित्वों का निर्वाह कर सकें, इस बात का विचार नियोजकों को करना होगा। एक उदाहरण लें। हमारे यहाँ श्रमिक की उत्पादकता बहुत कम है। यंत्र के सहारे वह बढ़ाई जा सकती है। बढ़ाना आवश्यक ही है। किंतु यंत्र ऐसा रहा कि जिसको चलाने के लिए बहुत कम आदमियों की जरूरत पड़े और शेष व्यक्ति बेकार हो जाएँ अथवा इन यंत्रों को बाहर से मँगवाने का खर्चा ही इतना अधिक हो कि उसका भुगतान करने में ही बढ़ी हुई उत्पादकता अधूरी पड़े तो कहना होगा कि वह यंत्र ठीक नहीं है। जैसे किसी कारखाने की पूरी क्षमता का उपयोग न कर पाना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं, वैसे ही देश के लोगों को बेकार रखना घाटे का सौदा है। यहाँ तो दुहरा घाटा है। खाली मशीन केवल पुरानी पूँजी खाती है, नया कुछ नहीं। पर बेकार मनुष्य तो आज भी खाता है। अतः आज तो 'कमाने वाला खाएगा' के स्थान पर 'खानेवाला कमाएगा' यह लक्ष्य रखकर हमें भारत की अर्थ रचना करनी होगी। चरखे की जगह कताई की मशीनें तो चाहिए, परंतु सब कामों के लिए स्वचलित मशीनें नहीं। पूर्ण रोजगार का लक्ष्य सामने रखकर ही हमें अन्य छह उत्पादनों का विचार करना चाहिए।

अर्थ रचना में व्यक्ति

व्यक्ति के उपयोग अथवा उसके रोजगार का विचार करते समय हमें पूर्ण एकात्म मानव का सदैव विचार रखना होगा। पिछली शताब्दियों के आर्थिक चिंतन और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था का यह परिणाम हुआ है कि हाड़-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल हो गया है। हम उसके व्यक्तित्व का तनिक भी विचार नहीं करते। पूँजीवादी अर्थशास्त्र मनुष्य को एक अर्थ लोलुप प्राणी मानकर चलता है।

उसके सभी निर्णय आर्थिक दृष्टिकोण से होते हैं। ऐसे व्यक्ति के सामने पांच रुपए सदैव चार रुपयों से अधिक होते हैं। वह अर्थोत्पादन की प्रेरणा से ही काम करता है। ज्यादा-से-ज्यादा लाभ उसका लक्ष्य है। जैसे बाजार में बाकी चीजें खरीदी-बेची जाती हैं, वैसे ही मानवश्रम क्रय-विक्रय की वस्तु है। यह फ्री एंटरप्राइज की व्यवस्था है। प्रतिस्पर्धा के ब्रेक को छोड़कर वह किसी दूसरे नियंत्रण को अन्याय मानता है। इस दौड़ में जो सबसे पीछे रह गया, उसे साथ लेकर चलने का विचार करने के लिए वह तैयार नहीं, प्रत्युत उसके विनाश को वह न्याय मानता है। वह अनार्थिक है, उसे नष्ट होना चाहिए। यह उसकी धारणा है। उसके विनाश से धीरे-धीरे शक्ति सिमटकर कुछ हाथों में केंद्रित हो जाती है। इसको पूँजीवादी अर्थशास्त्र स्वाभाविक प्रक्रिया मानता है। किंतु एकाधिकार होने के बाद प्रतिस्पर्धा का ब्रेक भी काम नहीं करता। उस स्थिति में प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न होने वाली प्रेरणा नष्ट हो जाती है। मूल्य मनमाने हो जाते हैं तथा गुण की दृष्टि से ह्रास होने लगता है।

उपभोक्ता के नाते भी इस अर्थशास्त्री की दृष्टि मानव की आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं की ओर नहीं अपितु उसकी जेब पर अर्थात् क्रयशक्ति पर रहती है। भूखे किंतु निर्धन की अपेक्षा पेट भरे और साधन की ही वहाँ चिंता की जाती है। फलतः जहाँ संपन्न की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नानाविध वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, वहाँ साधनहीन के लिए जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं का भी अभाव बढ़ता जाता है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकास नहीं

उत्पादन केंद्रीकरण एवं एकाधिपत्य के कारण उपभोक्ता धीरे-धीरे प्रभावहीन हो जाता है। बाजारों का संगठन इस प्रकार किया जाता है कि उसमें रामप्रसाद के पैर के नंबर का जूता मिलेगा। सभी क्षेत्रों में यह वर्गीकरण इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि व्यक्ति का निजी व्यक्तित्व नष्ट होकर वह एक नंबर बनता जा रहा है। ड्यूइ दशमलव प्रणाली के अनुसार जैसे पुस्तकों का वर्गीकरण कर उसे एक निश्चित नंबर दिया जाता है। वैसे ही मानव को भी दिया जा सकता है। व्यक्ति को ही सबकुछ मानने वाली अर्थव्यवस्था ने व्यक्तित्व को बिल्कुल ही समाप्त करा दिया है। स्पष्टतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था 'मानव' का विकास करने में असमर्थ सिद्ध हुई है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था प्रतिक्रियावादी

पूँजीवाद के विरोध में समाजवादी अर्थव्यवस्था आई। किंतु वह भी मानव को उसकी प्रतिष्ठा नहीं दे पाई। उसने पूँजी का स्वामित्व राज्य के हाथ में देकर संतोष कर लिया।

किंतु 'राज्य' तो अत्यधिक अवैयक्तिक संस्था है। वहाँ का तो हर काम विधि-विधान और नियमों के अधीन चलता है। वहाँ तो सामान्यतः स्वविवेक के लिए स्थान नहीं और यदि कहीं रहता है तो शासनाधिकारियों में अत्युच्च कर्तव्यभाव एवं समाजनिष्ठा न रही तो पक्षपात और भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने तो केवल अर्थपरायण मानव का विचार किया तथा अन्य क्षेत्रों में उसे स्वतंत्र छोड़ दिया। अतः वह कुछ मात्रा में अपने व्यक्तित्व का विकास कर सका। किंतु समाजवादी व्यवस्था तो मात्र जातिवाचक मानव का ही विचार करती है। उसमें व्यक्ति की रुचि, प्रकृति एवं गुणों की विविधता एवं उसके आधार पर विकास के लिए कोई स्थान नहीं।

जिस प्रकार जेल मेन्यूअल में मानव का विचार कर उसकी आवश्यकताओं की चिंता की गई है तथा उसके कार्यों का विधान किया गया है, इसी प्रकार समाजवादी व्यवस्था में मानव का विचार अत्यंत ही अवैयक्तिक आधार पर किया गया है। वहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता नाम की कोई चीज नहीं है।

व्यक्ति पर राज्य हावी

समाजवादी व्यवस्था में निजी संपत्ति नहीं है। अब संपत्ति के निजी स्वामित्व से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं से वह मुक्त है। किंतु संपत्ति से तथा उसके अर्जन की एषणा से जो व्यक्तित्व का विकास और पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है, उसकी वहाँ कोई समाधान कारक व्यवस्था नहीं की गई। राज्य को सर्वेसर्वा बना दिया गया है। व्यक्ति इस भीमकाय मशीन का पुर्जा मात्र रह गया है। यह पुर्जा ठीक-ठाक काम करे, इसके लिए किसी अंतःप्रेरणा का विचार नहीं हुआ। जिलास[3] के अनुसार शोषकों का पुराना वर्ग तो समाप्त हो चला है किंतु नौकरशाही का नया शोषक वर्ग उत्पन्न हो रहा है। कार्ल मार्क्स ने इतिहास का जो विश्लेषण किया, उसमें कम्युनिज्म को पूँजीवाद की स्वाभाविक परिणति बताया है। पूँजीवाद में ही पूँजीवाद के विनाश के बीज छिपे हुए हैं, यह उसका विधान है।

यह कल्पना साम्यवादी कार्यकर्ताओं को अपनी अंतिम विजय का विश्वास दिलाने के लिए चाहे लाभप्रद प्रतीत हो, किंतु उससे मानव की सुधारवादी एवं क्रांतिकारी प्रेरणा

समाजवादी व्यवस्था में निजी संपत्ति नहीं है। अब संपत्ति के निजी स्वामित्व से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं से वह मुक्त है। किंतु संपत्ति से तथा उसके अर्जन की एषणा से जो व्यक्तित्व का विकास और पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है, उसकी वहाँ कोई समाधान कारक व्यवस्था नहीं की गई। राज्य को सर्वेसर्वा बना दिया गया है। व्यक्ति इस भीमकाय मशीन का पुर्जा मात्र रह गया है। यह पुर्जा ठीक-ठाक काम करे, इसके लिए किसी अंतःप्रेरणा का विचार नहीं हुआ। जिलास के अनुसार शोषकों का पुराना वर्ग तो समाप्त हो चला है किंतु नौकरशाही का नया शोषक वर्ग उत्पन्न हो रहा है। कार्ल मार्क्स ने इतिहास का जो विश्लेषण किया, उसमें कम्युनिज्म को पूँजीवाद की स्वाभाविक परिणति बताया है

नष्ट हो जाती है। वह युग का निर्माता नहीं अथवा क्रांति का स्रष्टा नहीं। जो कुछ पूर्व निश्चित है, उसका निमित्त मात्र है। उसका काम तो विधि के विधान में कुछ तेजी लाना है। इसलिए वह मजदूरों का संगठन करके भी उनके हित की चिंता नहीं करता, बल्कि उन्हें साधन के रूप में ही प्रयोग करता है। कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवादी विधान भी तब तक काम करता है, जब तक पूँजीवाद नष्ट होकर सर्वहारा के अधिनायक के रूप में राज्य सर्वेसर्वा नहीं बन जाता। इसके बाद राज्य इस नियम को काम में नहीं आने देता। प्रति क्रांति को रोकने के नाम पर राज्य अधिकाधिक निरंकुश बनता जाता है तथा वह दिन जब राज्य समाप्त होकर राज्य-विहीन समाज व्यवस्था जन्म लेगी, एक कल्पना मात्र रह जाती है। वास्तव में क्रिया, प्रतिक्रिया और संक्रिया की प्रक्रिया को रोकना ही मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार एक प्रतिगामी एवं प्रगतिविरोधी कार्य है। मार्क्स अपने ही दर्शन को झुठलाता है। इन दोनों ही अवस्थाओं में मानव के सही एवं पूर्ण रूप को नहीं समझा गया। एक में उसे स्वार्थी, अर्थपरायण, संघर्षशील एवं मत्स्यन्याय-प्रवण प्राणी माना गया है, तो दूसरी में व्यवस्थाओं और परिस्थितियों का दास, अकिंचन एवं अनास्थामय माना गया है। शक्तियों का केंद्रीकरण दोनों में अभिप्रेत है। फलतः दोनों का परिणाम अमानवीयकरण में हो रहा है।

भगवान् की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव अपने को खोता जा रहा है। हमें मानव को पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना होगा, उसकी गरिमा का उसे ज्ञान कराना होगा, उसकी शक्तियों को जगाना होगा तथा उसे देवत्व की प्राप्ति के हेतु पुरुषार्थशील बनाना होगा। यह विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा ही संभव है।

हमें समाजवाद अथवा पूँजीवाद नहीं 'मानव' का उत्कर्ष और सुख चाहिए। 'मानव' को दाँव पर लगाकर आज दोनों लड़ रहे हैं। दोनों ने न तो मानव को समझा है और न उन्हें मानव की चिंता है।

हमारी अर्थव्यवस्था

हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिए-

समयाभाव के कारण मैंने अर्थव्यवस्था के संस्थागत पहलुओं की चर्चा नहीं की है। किंतु यह स्पष्ट है कि अनेक पुरानी संस्थाएँ बदलेंगी और नई जन्म लेंगी। इस परिवर्तन के कारण जिनका पुरानी संस्थाओं में निहित स्वार्थ है, उन्हें धक्का लगेगा। कुछ लोग जो प्रकृति से ही अपरिवर्तनवादी हैं, उन्हें भी सुधार और सृजन के इन प्रयत्नों में कुछ कष्ट होगा। किंतु बिना औषधि के रोग ठीक नहीं होता और व्यायाम के कष्ट उठाए बिना बल भी नहीं आता। अतः हमें यथास्थिति का मोह त्यागकर नव-निर्माण करना होगा

1. प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की आश्वस्ति तथा राष्ट्र की सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था।
2. इस स्तर के उपरांत उत्तरोत्तर समृद्धि, जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को वे साधन उपलब्ध हो सकें, जिससे वे अपनी चिति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें।
3. उपर्युक्त लक्ष्यों की सिद्धि के लिए प्रत्येक सवय एवं स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय रोजगार का अवसर देना तथा प्रकृति के साधनों का मितव्ययित्ता के साथ उपयोग करना।
4. राष्ट्र के उत्पादक उपादानों का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना।
5. यह व्यवस्था 'मानव' की अवहेलना न कर उसके विकास में साधक हो तथा समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन-मूल्यों की रक्षा करे। यह लक्ष्मण रेखा है, जिसका अतिक्रमण अर्थ रचना किसी भी परिस्थिति में नहीं कर सकती।
6. विभिन्न उद्योगों आदि में राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो।

ये कुछ मोटी-मोटी बातें हैं जिनका विचार कर हमें अर्थ रचना करनी होगी। आज की परिस्थिति में यदि किन्हीं दो शब्दों का प्रयोग कर अपनी अर्थव्यवस्था की दिशा में परिवर्तन को बताना हो तो वे हैं 'विकेंद्रीकरण और स्वदेशी'। हम आज जो रचना कर रहे हैं, उसमें 'केंद्रीकरण' जाने अथवा अनजाने में हमारी श्रद्धा का विषय बन गया है। केंद्रीकरण ही आर्थिक है, यह हमारी मान्यता बन गई है और इसलिए उसके दुष्परिणाम की चिंता न करते हुए अथवा जानकर भी विवश से हम उसी ओर बढ़ रहे हैं। यही हाल 'स्वदेशी' का है। स्वदेशी की कल्पना बीते युग की तथा प्रतिगामीपन की द्योतक समझी जाती है। विदेशों की हर वस्तु हम बड़े चाव से ले रहे हैं। विचार, व्यवस्था, पद्धति, पूँजी, उत्पादन-प्रणाली, प्रौद्योगिकी तथा उपभोग के मानदंड सभी क्षेत्रों में हम विदेशों पर निर्भर हैं। यह प्रगति का रास्ता नहीं। इससे विकास नहीं होगा। हम अपने 'स्व' को विस्मृत कर परतंत्र हो जाएँगे। 'स्वदेशी' के भावात्मक रूप को समझकर हमें उसे सृजन का आधार एवं अवलंब बनाना चाहिए।

नवनिर्माण करना होगा

समयाभाव के कारण मैंने अर्थव्यवस्था के संस्थागत पहलुओं की चर्चा नहीं की है। किंतु यह स्पष्ट है कि अनेक पुरानी संस्थाएँ बदलेंगी और नई जन्म लेंगी। इस परिवर्तन के कारण जिनका पुरानी संस्थाओं में निहित स्वार्थ है, उन्हें धक्का लगेगा। कुछ लोग जो प्रकृति से ही अपरिवर्तनवादी हैं, उन्हें भी सुधार और सृजन के इन प्रयत्नों में कुछ कष्ट होगा। किंतु बिना औषधि के रोग ठीक नहीं होता और व्यायाम के कष्ट उठाए बिना बल भी नहीं आता। अतः हमें यथास्थिति का मोह त्यागकर नव-निर्माण करना होगा। हमारी रचना में प्राचीन के प्रति अश्रद्धा एवं अवज्ञा का भाव अवश्य नहीं होना चाहिए। किंतु उससे चिपके रहने की आवश्यकता नहीं। परितर्वन की दिशा कौन सी होगी, इसका हमने ऊपर विचार किया है।

उपसंहार

हमने 'मानव' के समग्र एवं संकलित स्वरूप

का इन चार दिनों में थोड़ा विचार किया है। इस आधार पर हम चलें तो हम भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के साथ राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र, समता और विश्व एकता के आदर्शों को एक समन्वित रूप में रख सकेंगे। इनके बीच का विरोध नष्ट होकर वे परस्पर पूरक होंगे। मानव अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा। हमने यहाँ तात्त्विक विवेचन किया है। किंतु भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ता मात्र दर्शन शास्त्री एवं एकेडमीशियन नहीं। हम तो भारतीय जनसंघ के माध्यम से राष्ट्र को सबल, समृद्ध और सुखी बनाने का संकल्प लेकर चले हैं। अत: इस अधिष्ठान पर हमें राष्ट्र रचना का व्यावहारिक प्रयत्न करना होगा। हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का भी विचार किया है। किंतु हम कोई पुरातत्त्ववेत्ता नहीं है। हम किसी पुरातत्त्व संग्रहालय के संरक्षक बनकर नहीं बैठना चाहते। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। उसके आधार पर राष्ट्र की धारणा हो और हमारा समाज स्वस्थ एवं विकासोन्मुख जीवन व्यतीत कर सके, इसकी व्यवस्था करनी है। इस दृष्टि से हमें अनेक रूढ़ियाँ खत्म करनी होगी, बहुत से सुधार करने होंगे, जो हमारे मानव का विकास और राष्ट्र की एकात्मता की वृद्धि में पोषक हों, वह हम करेंगे और जो बाधक हो उसे हटाएँगे। ईश्वर ने जैसा शरीर दिया है, उसमें मीन-मेख निकालकर अथवा आत्मग्लानि लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है। पर शरीर में फोड़ा होने पर उसका ऑपरेशन तो आवश्यक है। सजीव और स्वस्थ अंगों को काटने की जरूरत नहीं है। आज यदि समाज में छुआछूत और भेदभाव घर कर गए हैं, जिसके कारण लोग मानव को मानव समझकर नहीं चलते और जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं तो हम उनको खत्म करेंगे।

हमें उन संस्थाओं का निर्माण करना होगा, जो हमारे अंदर कर्मचेतना पैदा करें, हमें स्व-केंद्रित एवं स्वार्थी बनाने के स्थान पर राष्ट्रसेवी बनाएँ, अपने बंधुओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण ही नहीं उनके प्रति आत्मीयता और प्रेम पैदा करें।

इस प्रकार की संस्थाएँ ही वास्तव में हमारी चिति का आविष्कार कर सकेंगी।

हमारा विराट

जैसे राष्ट्र का आधार चिति होती है वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है, उसे 'विराट' कहते हैं। 'विराट' राष्ट्र की वह कर्मशक्ति है, जो चिति से जाग्रत् एवं संगठित होती है। विराट् का राष्ट्रजीवन में वही स्थान है, जो शरीर में प्राण का है। प्राण से ही सभी इंद्रियों को शक्ति मिलती है। बुद्धि को चैतन्य प्राप्त होता है और आत्मा शरीरस्थ रहता है। राष्ट्र में भी विराट के सबल होने पर ही उसके भिन्न-भिन्न अवयव अर्थात संस्थाएँ सक्षम और समर्थ होती हैं। अन्यथा संस्थागत व्यवस्था केवल दिखावा मात्र रह जाता है। विराट के आधार पर ही प्रजातंत्र सफल होता है और राज्य बलशाली बनता है। इसी अवस्था में राष्ट्र की विविधता उसकी एकता के लिए बाधक नहीं होती।

भाषा, व्यवसाय आदि भेद तो सभी जगह होते हैं। किंतु जहाँ विराट जाग्रत रहता है, वहाँ संघर्ष नहीं होते, सब लोग शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की भाँति या कुटुंब के घटकों के समान परस्पर पूरकता से काम करते रहते हैं।

हम विराट् जाग्रत करें

हमें अपने राष्ट्र के विराट को जाग्रत करने का काम करना है। अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन लेकर और भविष्य की महत्त्वाकांक्षा लेकर हम इस कार्य में जुट जाएँ। हम भारत को न तो किसी पुराने जमाने की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं और न रूस या अमरीका की प्रतिकृति।

विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी संपूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसा भारत निर्माण करेंगे, जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा तथा जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत दैवी और प्रवहमान रूप है। चौराहे पर खड़े विश्वमानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है। भगवान् हमें शक्ति दे कि हम इस कार्य में सफल हों, यही प्रार्थना है।

(पाञ्चजन्य, अप्रैल 25, 1965)

संदर्भ-

1. विश्व इतिहास में महामंदी या भीषण मंदी (The Great Depression) 1929 में शुरू हुई और 1939-40 तक जारी रही। इसके बड़े व्यापक आर्थिक व राजनैतिक प्रभाव हुए। इससे फासीवाद बढ़ा और अंतत: द्वितीय विश्वयुद्ध की नौबत आई। महामंदी के महाप्रभाव में 1 करोड़ 30 लाख लोग बेरोजगार हो गए, 1929 से 1932 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की दर में 45 प्रतिशत तथा आवास निर्माण की दर में 80 प्रतिशत की कमी हो गई थी। इस दौरान 5 हजार से भी अधिक बैंक बंद हो गए थे।
2. सर मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया (1860-1962) भारत के महान् अभियंता जो मैसूर राज्य के 1912 से 1918 तक दीवान रहे। बैंक ऑफ मैसूर, कृष्णराजसागर बाँध, भद्रावती आयरन एंड स्टील वर्क्स, मैसूर संदल ऑयल एंड सोप फैक्टरी, मैसूर विश्वविद्यालय आदि की स्थापना इनके कड़े प्रयासों से ही संभव हो पाई। ये उद्योग को देश की जान मानते थे, इसीलिए इन्होंने पहले से मौजूद उद्योगों को जापान व इटली के विशेषज्ञों की मदद से और अधिक विकसित किया। भारतीय उद्योगों के ढाँचागत विकास के लिए इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं, जिसमें-कंस्ट्रक्टिंग इंडिया (1920); रूरल इंडस्ट्रियलाइजेशन इन इंडिया (1931); अनएंप्लॉयमेंट इन इंडिया : इट्स कॉज एंड क्योर (1932); प्लांड इकॉनोमी फॉर इंडिया (1934); नेशनल बिल्डिंग: ए फाइव इयर प्लान फॉर द प्रोविन्सेस (1937); डिस्ट्रिक्ट डेवलपमेंट स्कीम (1939); प्रोस्पेरिटी थ्रू इंडस्ट्री (1942) तथा कूल विलेज इंडस्ट्रियलाइजेशन (1945) प्रमुख हैं।
3. मिलोवान जिलास (1911-1995) यूगोस्लाव कम्युनिस्ट राजनीतिज्ञ, विचारक और लेखक थे।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी

विकास के भारतीय स्वरूप का दर्शन

अनेक समस्याओं को जन्म देने वाली अनियंत्रित उपभोग संस्कृति के समक्ष हमारे पास सतत और संतुलित विकास का विकल्प है। एक समग्र दृष्टि

विकास केवल भौतिक संपन्नता का मामला नहीं; मूल्य, संस्कृति एवं प्रकृति की एकात्मता भी इसका सार है। प्राचीन भारतीय 'एकात्म मानववाद' में मनुष्य, समाज, प्रकृति और अर्थव्यवस्था का ताना-बाना अहिंसात्मक, समावेशी व संवेदनशील ढंग से बुना है। अनियंत्रित उपभोग-संस्कृति, सीमित संसाधनों पर असंतुलन, सामाजिक विषमता, और पर्यावरण क्षरण को जन्म देती है। नीति आयोग, ओईसीडी व यूएनईपी के अनुसार, भारत के सामने सतत और संतुलित विकास ही एकमात्र समाधान है, जिसमें सांस्कृतिक चेतना, नीति-परिवर्तन, और आमजन सहयोग अनिवार्य है। आधुनिक विकास का मार्ग, राष्ट्रहित के साथ वैश्विक बंधुत्व भी सुनिश्चित करे।

पर्यावरणीय क्षरण

भारत में पर्यावरणीय क्षरण की जटिलता बढ़ती जा रही है। यूएनईपी की 2022 रिपोर्ट के अनुसार, देश की 132 से अधिक नदियाँ प्रदूषण, अतिक्रमण और औद्योगिक अपशिष्ट से जूझ रही हैं, जबकि केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) बताता है कि गंगा, यमुना, कृष्णा और साबरमती जैसे प्रमुख जलस्रोत रासायनिक और जैविक प्रदूषण के उच्च स्तर तक पहुँच चुके हैं। उत्तर प्रदेश का उन्नाव क्षेत्र चमड़ा उद्योग के कारण जल-मिट्टी प्रदूषण से प्रभावित है; परिणामस्वरूप उपज में 26% की गिरावट आँकी गई।

पंजाब के मालवा बेल्ट में नाइट्रेट और यूरेनियम की उपस्थिति, डब्ल्यूएचओ द्वारा कैंसर बेल्ट घोषित करने का कारण बनी है। यहाँ के 70% गाँवों में पेयजल की गुणवत्ता मानकों से परे है, जिससे बाल्यावस्था कैंसर की दर देश में सर्वाधिक है। केरल के एलेप्पी और कोट्टायम जिलों में झील-सिकुड़ने एवं केचुआ-कृषि के नष्ट होने से मछुआरा समुदाय पलायन के लिए विवश है; राज्य रिपोर्ट के अनुसार 2016-2022 के बीच 35% आजीविका घट चुकी है।

राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, और बीकानेर में थार मरुस्थल अपने विस्तार की वजह से कृषि भूमि को निगल रहा है। भारत के इंस्टीट्यूट ऑफ इकोलॉजी के अनुसार, पिछले बीस वर्षों में यहाँ 6,000 वर्ग किमी नई भूमि मरुस्थल में बदली है। मध्य प्रदेश के पत्थलगांव में कोयला खनन से प्रदूषण और विस्थापन गहराया है, जिससे 210 गाँव प्रभावित हुए, और 2018-23 में लगभग 90,000 लोग विस्थापित हुए। वन संसाधनों के क्षरण से झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा के आदिवासी समुदाय आजीविका, स्वास्थ्य और पोषण संकट में आए हैं।

2018 की वर्ल्ड बैंक इंडिया रिपोर्ट अनुसार, पर्यावरणीय क्षरण से सालाना 80 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष नुकसान हो रहा है, जो भारत की जीडीपी का 5.7% है। दिल्ली-एनसीआर देश के सबसे अधिक प्रदूषित शहरों में है; 2022 में एक्यूआई 400 पार करना आम था, जिससे श्वसन रोगियों की संख्या 40% बढ़ी। महाराष्ट्र के विदर्भ में जंगल कटान ने भूजल स्तर गिराया; किसानों की आय 24% घटी और आत्महत्या दर बढ़ी।

असम के काजीरंगा में अवैध खनन व पर्यटक दबाव से एक सींग वाले गैंडों के आवास सिकुड़ रहे हैं; 2020 असम राज्य रिपोर्ट के मुताबिक, पार्क क्षेत्र में 20% गिरावट दर्ज हुई। झारखंड व भाजपा शासित राज्यों में लौह और कोयला खनन से पारिस्थितिक असंतुलन हुआ; राज्य आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक, पानी की समस्या बढ़ गई और ग्रामीण रोजगार में गिरावट आई।

हरियाणा, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश

में रबी-सुरक्षित खेती के लिए पेस्टीसाइड का अंधाधुंध उपयोग, मिट्टी के सूक्ष्मजीव नष्ट कर रहा है-एफएओ के मुताबिक, 1990-2020 में देश का शुद्ध वन क्षेत्र 2% घटा। केंद्रीकृत पशुपालन व फ्लोरिडा तकनीक के दबाव में परंपरागत जैविक कृषि सिकुड़ रही है, जिससे लंबे समय में मिट्टी बंजर हो रही है।

वैश्विक तुलना करें तो चीन में रैपिड औद्योगीकरण से वायु प्रदूषण के चलते 10 लाख से अधिक समय पूर्व मौतें 2022 में हुई; ब्राजील में अमेजन वनों की कटाई ने दुनिया भर में जैव विविधता की चिंता बढ़ा दी। बांग्लादेश में नदी क्षरण व बाढ़ के कारण जनसंख्या का 12% विस्थापित है। नीति आयोग का कहना है, यदि भारत में साक्षरता के साथ-साथ पर्यावरण शिक्षा नहीं बढ़ती, तो सतत विकास का सपना अधूरा रह जाएगा।

जन-जागरूकता बढ़ाने के लिए, 'स्वच्छ भारत', 'नमामि गंगे', 'हरित भारत मिशन' जैसी सरकारी पहल हुई हैं, किंतु डब्ल्यूआरआई की रिपोर्ट के अनुसार, इनका प्रभाव क्षेत्रीय और असमान है-विशेषकर ग्रामीण/आदिवासी इलाकों में लचीलापन और जागरूकता की भारी कमी है।

वैश्विक ऊष्मीकरण व जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन एक जीवंत, बहुआयामी संकट बन चुका है। आईपीसीसी की 2023 रिपोर्ट के अनुसार, 1901-2021 के बीच भारत में औसत तापमान 0.7°C बढ़ा, और भविष्यवाणी है कि 2100 तक यह 2-4°C तक बढ़ सकता है। भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) के आंकड़ों के अनुसार, 2022 में राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश समेत 12 राज्यों में गर्मी की लहर से कृषि कुशलांश 30% कम हुआ।

बिहार के दरभंगा और मुजफ्फरपुर क्षेत्र, देश के सबसे संवेदनशील जलवायु क्षेत्रों में गिने जाते हैं, जहाँ 2021 में बाढ़ से 2.5 लाख हेक्टेयर फसल नष्ट हुई और लगभग 9,00,000 लोग विस्थापित हुए। पश्चिम बंगाल के सुंदरबन क्षेत्र में समुद्र स्तर में प्रति वर्ष 3 एमएम की दर से वृद्धि हो रही है, जिससे भूमि और आजीविका दोनों घट रही हैं-2021 में 40,000 लोग विस्थापित हुए।

तमिलनाडु के तटीय जिलों में, साउथ एशियन नेटवर्क ऑन डैम्स रिवर्स ऐंड पीपल (एसएएनडीआरपी) के शोध के अनुसार, समुद्र का क्षरण प्रति वर्ष 2 मीटर तक हो गया है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में, 2010 के बाद से समुद्र-स्तर में 12 cm की वृद्धि दर्ज हुई है। असम और उत्तर-पूर्व के बाढ़-प्रवण जिलों में, 2020-2022 के दौरान चार मुख्य बाढ़ आपदाओं से राज्य GDP का लगभग 5% नुकसान हुआ।

हिमाचल, उत्तराखंड, सिक्किम जैसे पहाड़ी राज्यों में ग्लेशियर लगातार पिघल रहे हैं-आईसीआईएमओडी की रिपोर्ट 2022 के अनुसार, 1975-2016 के दौरान हिमालय क्षेत्र में 20% ग्लेशियर संकुचन हुआ। इससे ब्रह्मपुत्र, अलकनंदा, यमुना में पानी की उपलब्धता प्रभावित होती है, और बार-बार बाढ़ व सुखाड़ का संकट उठता है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व बिहार की सिंचाई प्रमुख नदियों पर निर्भर है, जलवायु परिवर्तन के चलते इनकी जल-आपूर्ति संकट में है।

केरल में, 2018 की अभूतपूर्व बाढ़ (केरल राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण) से 1046 मौतें, 30,000 करोड़ रुपए का नुकसान और 1.4 मिलियन लोग विस्थापित हुए, कृषि भूमि एवं इंफ्रास्ट्रक्चर बुरी तरह प्रभावित हुए। महाराष्ट्र के विदर्भ व मराठवाड़ा क्षेत्रों में चक्रवात व अनियमित वर्षा के कारण किसान ऋणग्रस्तता बढ़ी है; 2022 में फसल हानि के लिए 1,200 करोड़ रुपए की बीमा-राशि दी गई।

संयुक्त राष्ट्र (यूएनडीपी इंडिया) के मुताबिक, जलवायु पलायन देश के कुल प्रवासियों का 20% है। उत्तराखंड के पहाड़ी गाँवों में किसानों को नए नकदी फसलों की खोज करनी पड़ी, जिससे परंपरागत कृषि की निरंतरता खतरे में है। तेलंगाना के आदिलाबाद जिले में न्यूनतम वर्षा से औसतन 33% कृषि उपज कम हो गई, जिससे करीब 60 गाँवों का पलायन हुआ।

सीओपी27 रिपोर्ट का कहना है, भारत जलवायु जोखिम सूचकांक में 7वें स्थान पर है। जर्मनी, जापान और अमेरिका ने बाढ़-सुरक्षा एवं हीटवेव प्रबंधन में भारत से कहीं अधिक संसाधन, तकनीक व जन-जागरूकता वित्त पोषित की है, जिससे प्राकृतिक आपदा का असर वहाँ अपेक्षाकृत कम देखा जा रहा है। भारत की तुलना में चीन ने जलाशय, बाढ़ पुनर्निर्माण, और स्मार्ट इरिगेशन में 2010-2022 के दौरान 180 अरब डॉलर निवेश किया।

कृषि, ऊर्जा, जल, स्वास्थ्य समेत हर क्षेत्र पर जलवायु परिवर्तन की सीधी मार पड़ी है। टेरी (द एनर्जी ऐंड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट) की 2023 रिपोर्ट बताती है कि वर्षा के बदलते पैटर्न, चरम तापमान और प्राकृतिक आपदाओं से भारतीय कृषि उत्पादकता प्रतिवर्ष 0.8% घट रही है, जिससे किसान आय संभावनाएँ सिकुड़ रही हैं।

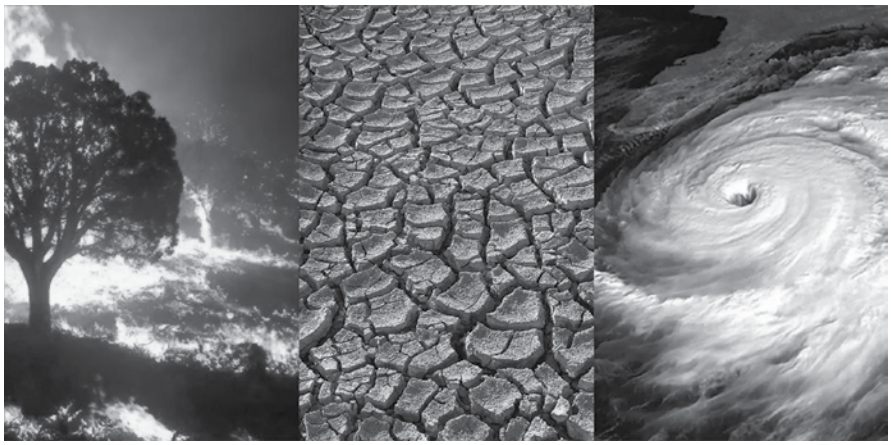

हिमालय का विनाश एवं संरक्षण की आवश्यकता

हिमालय न केवल भारत, बल्कि संपूर्ण दक्षिण एशिया के लिये जीवनदायिनी है। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ की 2021 रिपोर्ट के अनुसार, हिमालय 1.5 अरब लोगों के लिए जल स्रोत

और 10 जबकि जैव विविधता हॉटस्पॉट हैं। उत्तराखंड के 2013 केदारनाथ प्रलय में, बादल फटने और ग्लेशियर आउटबर्स्ट के कारण 6,000 से अधिक मौतें, 200 गाँवों का पुनर्वास, और 5,000 करोड़ रुपए से अधिक की आर्थिक क्षति दर्ज हुई।

हिमाचल के किन्नौर, मंडी और कुल्लू में भूमि क्षरण, पेड़ों की कटाई और अनियंत्रित सड़क निर्माण ने पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ाया है; 2021 की राज्य सरकार रिपोर्ट के अनुसार, 18% वन क्षेत्र सिकुड़ गया, और फल उत्पादन में 21% गिरावट आई। सिक्किम के उत्तरी भागों में पर्यटन दबाव, जलवायु परिवर्तन और खेती के बदलाव से 2022 में 30 झीलें सिकुड़ गईं, 25% जलाशय प्रदूषित हुए और चार गाँवों का पलायन हुआ।

उत्तराखंड व हिमाचल के पर्वतीय गाँवों में जलस्रोतों का क्षरण, जंगलों की आग और बेतरतीब बस्तियाँ बाहर निकलने का मुख्य कारण बनीं। जी.बी. पंत हिमालयन इंस्टीट्यूट के अनुसार 2019-2023 के बीच कुमाऊँ मंडल के 150 गाँवों में 40% तक आबादी ने पलायन किया। राज्य सरकारों ने 'ग्रामीण जल संरक्षण', 'वन संवर्धन', 'प्लास्टिक नो-जोन' जैसे कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं; फिर भी, यूएनडीआरआर आकलनों के मुताबिक फंडिंग व स्थानीय भागीदारी सीमित रही।

हिमालयी ग्लेशियरों के पिघलाव का सीधा असर पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम की जीवनरेखा नदियों पर पड़ता है-आईसीआईएमओडी रिपोर्ट के अनुसार, 2050 तक भारत की 40% जल आपूर्ति संकट में पड़ सकती है। पर्यावरणीय खतरे के चलते जम्मू-कश्मीर के खासकर बारामूला, किश्तवाड़ व लेह क्षेत्रों में ग्रामीण आजीविका, केसर उत्पादन व पशुपालन प्रभावित हुआ है। सिक्किम व अरुणाचल में बाढ़ व भूस्खलन के कारण चाय और मसाला बागानों में 33% गिरावट आई।

पर्यटन स्थलों (मसूरी, नैनीताल, श्रीनगर, दार्जिलिंग) में अवैध निर्माण, कचरा, भूमिगत जल निकासी एवं होटलिंग से पारिस्थितिक दबाव बढ़ा है। केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय की 2022 रिपोर्ट में कहा गया कि स्थानीय संसाधनों की वहन क्षमता 40% अधिकतम पर पहुँच रही है, जिससे दीर्घकालीन क्षरण जरूर होगा। स्थानीय प्रशासन द्वारा 'ईको-सेंसिटिव जोन', 'ग्रीन टैक्स', 'प्लास्टिक प्रतिबंध' जैसे उपाय किए गए हैं, किंतु ओसीईडी के मुताबिक, नीति क्रियान्वयन में विविध राज्य सरकारों-केंद्र समन्वय की कमी है।

भूटान एवं नेपाल ने ट्रांसबाउंडरी संरक्षण की दिशा में कुछ सफल प्रयोग किए हैं-भूटान में पर्यावरण अनुदान और वन संवर्धन से भूक्षरण दर में 19% की कमी आई है। ओईसीडी की 2023 रिपोर्ट बताती है कि हिमालयी पारिस्थितिकी की सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, विज्ञान-केंद्रित नीति व स्थानीय लोगों की भागीदारी से संभव है। राज्य सरकारें 'ग्रीन हिमालय मिशन', 'वृक्ष मित्र योजना', और 'जंगल पुर्नस्थापन कार्यक्रम' चलाकर संरक्षण प्रयास में लगी हैं।

भूकंप

भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल का 58% भाग भूकंप संवेदनशील जोन में आता है-जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के मुताबिक, सबसे उच्च जोखिम क्षेत्र उतराखंड, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल, बिहार, असम, मणिपुर, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, सिक्किम व दिल्ली एनसीआर है। 2001 के गुजरात भूकंप (7.7 तीव्रता) में 20,000 से अधिक मौतें, 1.3 मिलियन मकान ध्वस्त और 12,000 करोड़ रुपए की क्षति हुई, राज्य जीडीपी का 7.7% क्षरण। यूपी के उत्तरकाशी (1991), बिहार के दरभंगा (1988), असम के सोनितपुर (2021) और सिक्किम (2011) के भूकंपों में जनहानि एवं इन्फ्रास्ट्रक्चर की निर्मित लागत प्रति वर्ष बढ़ रही है।

उत्तराखंड के चमोली, पिथौरागढ़; हिमाचल के मंडी, शिमला; असम के नगांव और मेघालय के शिलांग, मणिपुर के इंफाल में हाल के वर्षों में 4.5-6 तीव्रता के 40 से अधिक भूकम्प दर्ज हुए हैं। दिल्ली-एनसीआर क्षेत्र में, 2022 में ही तीन बार 5+ तीव्रता के झटके महसूस किए गए, एनआईडीएम की रिपोर्ट के अनुसार, यहाँ 3 लाख से अधिक भवन पुराने निर्माण नियमों के अनुसार बने हैं-यदि 7.5 तीव्रता का भूकंप आता है तो हाई-रिस्क में हैं।

अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ डालने वाले ये भूकंप खासकर गरीब/आदिवासी और ग्रामीण समुदाय का जीवन संकट में डाल देते हैं। सुदूर हिमालयी राज्यों में त्वरित राहत पहुंचाना चुनौतीपूर्ण है, वहीं पूर्वांचल, विदर्भ, मराठवाड़ा के पिछड़े जिलों में आपातालय व बुनियादी सेवा नेटवर्क सीमित है। जियोलॉजिकल सर्वे के अनुसार 1990-2020 के बीच भारत ने भूकंप आपदाओं के कारण 1.25 लाख मौतें झेली, 75,000 करोड़ का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष नुकसान उठाया।

राज्यपालों ने आपदा प्रबंधन नीति को सुदृढ़ करने हेतु धारा-35/38 के तहत राज्य, जिला और ग्राम-स्तर की आपदा प्रबंधन समितियाँ बनाई हैं। बिहार, गुजरात, हिमाचल, असम ने भूकम्प रोधी भवन कोड को राज्य संहिताओं में लागू किया, परंतु यूएनडीआरआर के मुताबिक, भवनों का केवल 35-40% ही मानकीकृत कोड के अनुरूप बना है; शेष असंगठित क्षेत्र अभी भी खतरे में है। केंद्रीय गृह मंत्रालय ने 2017 से उत्तरांचल, हिमाचल में अर्ली-वॉर्निंग सिस्टम स्थापित किये हैं; महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, और नॉर्थ-ईस्ट के कुछ जिलों में भी सिस्टम विस्तार हुआ।

विश्व स्तर पर जापान, तुर्किए, न्यूजीलैंड आदि देशों ने नागरिक शमन, भूकंप प्रशिक्षित संरचना व त्वरित आपदा राहत में भारत से कहीं बेहतर प्रगति की है-जापान में 2024 तक कड़े बिल्डिंग कोड और हर नागरिक के लिए आपदा प्रशिक्षण अनिवार्य बना है, जिसका असर मृत्यु और नुकसान दर में दिखता है। भारत में नीति आयोग, एनआईडीएम, राज्य सरकारें शहरी तथा ग्रामीण समाज में शमन व लचीलापन बढ़ाने का प्रयास कर रही हैं, किंतु क्रियान्वयन व फंडिंग विलंबित है। 2022 की नेशनल डिजास्टर रिस्क इंडेक्स में उत्तराखंड, हिमाचल, असम, बिहार, और गुजरात उच्चतम जोखिम श्रेणी में हैं; इन राज्यों के रिकॉर्ड संकेत देते हैं कि अधिक ठोस तैयारी और सामाजिक जागरूकता की आवश्यकता है।

सूखे की घटनाएँ

आईएमडी के अनुसार, 2000-2024 में भारत में 47 गंभीर सूखाग्रस्त घटनाएँ दर्ज हुई, जिनमें 12 बेहद गंभीर थीं। टेरी की रिपोर्ट (2023) कहती है कि 2015-2016

के महा-सूखे में कृषि-उत्पादकता 23% घटी, 264 मिलियन लोग जल-संकट से प्रभावित हुए। राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, गुजरात सबसे प्रभावित हैं।

महाराष्ट्र के मराठवाड़ा (औरंगाबाद, परभणी, बीड़) में 2016-2018 के लगातार सूखे ने किसान-आय 60% घटाई, 4,500 किसानों ने आत्महत्या की। 80,000 पशु मरे, परिवार-ऋण 2.5 लाख रुपए प्रति परिवार हो गया। विदर्भ (नागपुर, वर्धा, अमरावती) में 5 लाख हेक्टेयर गन्ना बर्बाद हुआ। कर्नाटक के बेलगाँव, बीजापुर, रायचूर में 4 वर्षीय सूखे ने मूँगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी 45% नष्ट किए।

तेलंगाना के आदिलाबाद, निजामाबाद, करीमनगर में जलाशय 75% खाली हुए। वर्ल्ड बैंक (2020) रिपोर्ट दर्शाती है कि पलायन 35% बढ़ा, 60 गाँव वीरान हो गए। ये गाँव पूर्ण रूप से मानव-शून्य हो गए हैं। गुजरात के कच्छ, साबरकांठा, बनासकांठा में 2014-2015 के सूखे ने 89 तालाब सुखा दिए, 50,000 हेक्टेयर चराई-भूमि बंजर हुई, 15 लाख पशु मरे।

आंध्र प्रदेश के अनंतपुर, चित्तूर, कडपा में कुआँ-तालाब-नल सूख गए; महिलाएँ 15-20 किमी पानी लाती हैं। यहाँ प्रति-व्यक्ति जल-उपलब्धता 95 लीटर/दिन है, जो डब्ल्यूएचओ-न्यूनतम (135 लीटर) से कम है। राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर में 2016-2018 में 60% कृषि-भूमि परती रही। ग्राउंड वॉटर बोर्ड के अनुसार, भूजल 50 मीटर नीचे चला गया है। पंजाब-हरियाणा के दक्षिणी भागों में 2014-2015 में गेहूँ-कपास 25-30% घटे।

बिहार के मधुबनी, दरभंगा, सारण में 2015-2016 में 3.2 मिलियन खाद्य-संकट झेले। यूएनडीपी-इंडिया (2023) दर्शाता है कि कृषि-आय 40% घटी, 25% किसान-परिवार कर्ज में डूबे। उड़ीसा के कालाहांडी, बलांगीर, सुबरनपुर में पानी-अभाव, बालिका-विवाह, कुपोषण बढ़े। आर्थिक क्षति: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के डिजास्टर मैनेजमेंट प्राधिकरण के अनुसार, 2015-2016 का महा-सूखा 24,000 करोड़ नुकसान लाया।

FAO कहता है कि भारत की कृषि GDP में सूखा-नुकसान प्रति वर्ष 1.4% है। ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीकी देशों, US के Great Plains में सूखा समान है, पर सिंचाई-आधुनिकता, फसल-बीमा, सरकारी सहायता से नुकसान कम है। भारत में यदि सिंचाई-नेटवर्क, बीमा-योजना, भूजल-संरक्षण बेहतर होते, तो संकट कम हो सकता था।

ग्रीष्मलहर - कारण और परिणाम

आईएमडी के अनुसार, भारत में ग्रीष्मलहरें पहले से अधिक तीव्र, लंबी, बार-बार आ रही हैं। 2022 में 26 राज्यों ने सर्वकालिक उच्च तापमान दर्ज किया, जिससे 1,500+ मौतें, 30% फसल-नुकसान, विद्युत-संकट हुआ। राजस्थान में मई-जून 2022 में 51°C, 240 मृत्यु, 5 लाख पशु-नुकसान। मध्य प्रदेश में 47°C, 120 मृत्यु, 15,000 हीटस्ट्रोक-मामले आए।

दिल्ली-NCR में 95 मौतें, विद्युत 40% बढ़ी, जल-संकट गहरा। उत्तर प्रदेश में 108 मौतें, कमजोर आबादी बीमार हुई। बिहार के पटना, मुजफ्फरपुर में श्रमिक-दक्षता 20-25% घटी। केरल में मानसून-देरी से काली मिर्च, नारियल 22% नष्ट। तमिलनाडु के चेन्नई में जलाशय सूखे, 200 किमी से पानी आयात।

आईसीएमआर (2010-2022) दर्शाता है कि हीटस्ट्रोक से 5,000+ मौतें, 67% दलित-आदिवासी-गरीब-समुदाय। वृद्ध, बच्चे, दिहाड़ी-मजदूर सबसे जोखिम। डाउन टु अर्थ (2025) कहता है कि एक हफ्ते का हीटवेव 30,000 अतिरिक्त मृत्यु ला सकता है, पर सरकारी आँकड़े 1/20 हैं - गंभीर कम-आँकलन है।

टेरी (2022) अनुसार, गेहूँ 2010 की तुलना में 14% कम हुई, दुग्ध 12% गिरा, पशु-मृत्यु बढ़ी। CEA के आँकड़े (2022) दर्शाते हैं कि विद्युत-माँग 30% अतिरिक्त, कटौती-ब्लैकआउट से 5,000 करोड़ उद्योग-नुकसान। सीईईडब्ल्यू (2025) 734 जिलों का विश्लेषण: 57% जिले (76% जनसंख्या) चरम-गर्मी से उच्च-जोखिम।

दिल्ली, महाराष्ट्र, गोवा, केरल, गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश सर्वाधिक जोखिम में। मुंबई में 15 अतिरिक्त गर्म रातें, बेंगलुरु में 11, शहरी ऊष्मा-द्वीप प्रभाव। असम-उत्तर-पूर्व में 2020-2022 के 4 बाढ़ से राज्य जीडीपी में 5% नुकसान। पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में समुद्र-स्तर वार्षिक 3 मिमी बढ़ता है।

श्रम मंत्रालय (2023) कहता है कि ग्रीष्मलहर में काम के नियम सीमित हैं, पर 90% अनौपचारिक श्रमिक असुरक्षित हैं। निर्माण-कर्मचारी, खेतिहर-मजदूर, रिक्शा-चालक सर्वाधिक असुरक्षित हैं। तुलनात्मक दृष्टि में, यूएस फीनिक्स, बगदाद में भी गर्मी है, पर एयर कंडिशनिंग, जल-संरक्षण, सामाजिक-सुरक्षा से मृत्यु-दर कम है। ऑस्ट्रेलिया (2020 के बाद) बुशफायर-हीटवेव के लिए अरबों निवेश किया है।

पश्चिमी आर्थिक मॉडल की विफलता - उपभोक्तावाद और पारिस्थितिक पदचिह्न

पश्चिमी अर्थशास्त्र 'अनंत वृद्धि' सिद्धांत पर आधारित है, जो सीमित ग्रह के साथ मौलिक विरोधाभास है। ग्लोबल फुटप्रिंट नेटवर्क (2024) कहता है कि मानवता की माँग 1.7 पृथ्वियों की है। विकसित देशों के एक नागरिक का कार्बन-पदचिह्न विकासशील के 5-10 नागरिकों से अधिक है। US का उपभोक्तावाद-मॉडल भारत, चीन में घुस रहा है, संसाधन-दबाव बढ़ता है। यूएनईपी (2023) अनुसार, भारत में प्रति-व्यक्ति वार्षिक उपभोग 2010-2022 में 180% बढ़ा है। शहरी भारत में प्लास्टिक-खपत 12 मिलियन टन/वार्षिक, 90% डिस्पोजेबल, लैंडफिल-नदी-समुद्र में जाता है।

पश्चिमी आर्थिक विचारधारा, सिद्धांत और मॉडल उपभोक्तावाद को अपनी मूल नींव, केंद्रीय सिद्धांत और मुख्य लक्ष्य के रूप में बनाता है, जिससे पारिस्थितिक पदचिह्न में अत्यधिक, असाधारण और विनाशकारी वृद्धि हुई है। विश्व बिजनेस काउंसिल फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट (डब्ल्यूबीसीएसडी) की 2008 की व्यापक, विस्तृत और विश्लेषणात्मक रिपोर्ट के अनुसार, उच्च आय वाले समूहों के बीच एक गहरी, व्यापक और सांस्कृतिक 'उपभोक्तावाद' की संस्कृति विकसित हुई है।

यह उपभोक्तावादी समूह वैश्विक खपत का सबसे बड़ा, महत्त्वपूर्ण और हानिकारक

हिस्सा (लगभग 80%) प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिष्ठित नेचर जर्नल में 2024 में प्रकाशित एक व्यापक, गहन और महत्त्वपूर्ण अध्ययन के अनुसार, विकसित देशों के औसत नागरिक का पारिस्थितिक पदचिह्न निम्न आय वाले देशों के नागरिकों की तुलना में 10 गुना अधिक है। यह विषमता केवल आर्थिक है बल्कि पर्यावरण की दृष्टि से विनाशकारी है। संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक, विस्तृत और व्यापक रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार, वैश्विक भौतिक पदचिह्न (ग्लोबल मटीरियल फुटप्रिंट) 1990 में 43 बिलियन मीट्रिक टन से बढ़कर 2000 में 54 बिलियन और 2017 में 92 बिलियन हो गया है।

यह 2000 के बाद से 70% की चिंताजनक, त्वरित और असाधारण वृद्धि दर्शाता है। संयुक्त राष्ट्र की विस्तृत, विश्लेषणात्मक और चिंताजनक रिपोर्ट के अनुसार, हमारी वर्तमान वैश्विक खपत पहले से ही पृथ्वी की वहन क्षमता का 125% है और 2040 तक यह खतरनाक, विनाशकारी रूप से 170% तक बढ़ सकती है।

यूरोपीय पर्यावरण एजेंसी (ईईए) की 2025 की नई, व्यापक और गहन रिपोर्ट के अनुसार, ईयू का खपत पदचिह्न 2010 से 2023 तक 5% बढ़ा है और 2030 तक और भी अधिक, असाधारण और चिंताजनक वृद्धि की संभावना है।

भोजन (49%), परिवहन (17%) और आवास (18%) सबसे महत्वपूर्ण और हानिकारक खपत क्षेत्र हैं जो कुल पारिस्थितिक प्रभाव का 84% योगदान करते हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (न्छम्च्) के अनुसार, वैश्विक खाद्य प्रणाली वनों की कटाई के लिए 80% जिम्मेदार है।

यह खाद्य उत्पादन प्रजातियों के विलुप्तीकरण और जैव विविधता के नुकसान का सबसे बड़ा, प्राथमिक और प्रमुख कारण है। रेखीय अर्थव्यवस्था (निष्कर्षण, उत्पादन, खपत और अपशिष्ट) को एक वृत्ताकार, नवीकरणीय और हरित अर्थव्यवस्था (सर्कुलर ग्रीन इकोनॉमी) में तुरंत, व्यापक और त्वरित गति से परिवर्तित करना अब केवल एक विकल्प नहीं बल्कि मानवता के अस्तित्व के लिए अत्यावश्यक है।

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य 12 के अनुसार, 2030 तक इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट (ई-वेस्ट) 82 बिलियन किलोग्राम तक पहुँच जाएगा, जो 2022 के 62 बिलियन किलोग्राम से 32% अधिक है। इसके अतिरिक्त, हर दिन विश्व स्तर पर 1 बिलियन भोजन की बर्बादी होती है, जबकि विश्व के लाखों-करोड़ों लोग अब भी भूख, कुपोषण और खाद्य असुरक्षा से जूझ रहे हैं।

पर्यावरण संकट के समाधान के रूप में भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन 'एकात्म मानववाद' में मनुष्य, प्रकृति, समाज, अर्थव्यवस्था एक जीवंत परस्पर-जुड़ा तंत्र हैं। वेदांत, उपनिषद, महाभारत के 'सर्वे भवंतु सुखिनः' (सब सुखी हों), "वसुधैव कुटुम्बकम्" (धरती एक परिवार) ने दशकों पहले आज का सस्टेनेबिलिटी बयान किया था।

दीनदयाल शोध संस्थान (2021) अनुसार, एकात्म मानववाद में विकास केवल भौतिक नहीं, सर्वांगीण कल्याण प्राथमिकता है। 'सतत विकास' नैतिक अनिवार्यता है। न्छ के 17 एसडीजी (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स) लक्ष्यों में अधिकांश भारतीय दर्शन में निहित हैं। डब्ल्यूएचओ (2023) कहता है कि आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी में प्रकृति-सामंजस्य, रोग-निवारक दृष्टिकोण आधुनिक स्वास्थ्य के लिए प्रासंगिक है।

'बहु समृद्धि, सर्वे सुखी' भारतीय लक्ष्य सामूहिक कल्याण पर जोर देता है, न कि व्यक्तिगत लालच पर। OECD (2023) की 'वेल बीइंग बियॉन्ड जीडीपी' रिपोर्ट कहती है कि विकसित देश जीडीपी-केंद्रिक विकास से मोहभंग हो चुके हैं। न्यूजीलैंड, फिनलैंड ने 'वेल बीइंग बजट' अपनाया है।

भारतीय 'वैष्णव पारिस्थितिकता' में प्रकृति केवल संसाधन नहीं, देव-स्वरूप है, जिसे सम्मान-पवित्रता से व्यवहार करना चाहिए। नदियाँ माता-रूप में पूजनीय - गंगा, यमुना, कृष्णा। पेड़, पर्वत, वन पवित्र हैं। यह दृष्टिकोण परिवर्तन-आधार है। नीति आयोग, वन मंत्रालय ने इसी से 'नमामि गंगे', 'हरित भारत', 'मिशन लाइफ' कार्यक्रम चलाए हैं।

'अहिंसा' का सिद्धांत, जो महात्मा गाँधी ने पर्यावरण-प्रेम के संदर्भ में प्रस्तुत किया, आज के 'जीरो वेस्ट', 'बायो मिमिक्री', 'रीजेनरेटिव एग्रीकल्चर' की ओर इशारा करता है। गाँधी के 'चरखा' (हथकरघा) में स्थानीय, निम्न-कार्बन उत्पादन-उपभोग है। यूएनईपी (2021) कहता है कि भारत की परंपरागत कृषि - जैविक-खेती, मिश्रित-खेती, बीज-संरक्षण - टिकाऊ खाद्य-सुरक्षा का मार्ग है। भारतीय एथनोबॉटनी में 8,000 वर्षों की वन-संरक्षण परंपरा है। साल-शाल-नीम-तुलसी सब पारंपरिक औषधि-कीटनाशक स्रोत हैं। आईयूसीएन (2023) कहता है कि भारतीय कॉमन लैंड्स. कम्युनिटी फॉरेस्ट में जैव-विविधता संरक्षण दर विश्व-औसत से 22% अधिक है - परंपरागत पंचायत-प्रबंधन का परिणाम।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' आज का 'ग्लोबल कॉमंस' प्रबंधन है - वायु, जल, जलवायु सब साझा। भारत ने 2070 तक कार्बन-निरपेक्ष होने की प्रतिबद्धता दी है - वैश्विक साझेदारी से। 2023 तक अक्षय-ऊर्जा (सौर, पवन) में भारत विश्व में 4जी तंदा पर है। भारत सरकार की 'नेशनल एक्शन प्लान ऑन क्लाइमेट चेंज' (एनएपीसीसी) में भारतीय दर्शन झलकता है - किसान-आय, आदिवासी-अधिकार, जल-संरक्षण प्राथमिकता। प्रधानमंत्री योजनाएँ - पीएमएवाई, पीएमजेडीवाई, पीम-किसान - सामाजिक सुरक्षा के साथ पर्यावरणीय उद्देश्य जोड़ते हैं। कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड में भारतीय पारिस्थितिक ज्ञान पर शोध चल रहा है।

निष्कर्ष

भारत के सामने पर्यावरण-संकट और विकास का द्वंद्व है। सूखा, ग्रीष्मलहर, भूकंप, हिमालय-विनाश, जल-क्षरण आज के संकट हैं - लाखों जीवन, अरबों रुपए की क्षति। पश्चिमी उपभोक्तावाद का अंधानुकरण भारत के लिए घातक है। भारतीय दर्शन - एकात्म मानववाद, सर्वे भवंतु सुखिनः, वसुधैव कुटुम्बकम् - में न केवल पर्यावरणीय हल है, बल्कि समान, न्यायपूर्ण, टिकाऊ विकास का पथ है। नीति आयोग, राज्य सरकारें, समाज सब को इस भारतीय दर्शन को जन-स्तर पर प्रचारित करना चाहिए, ताकि 'बहु समृद्धि, सर्वे सुखी' - यह सपना साकार हो, और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ, न्यायसंगत, और टिकाऊ भारत निर्मित हो। यह केवल नीति निर्माण का विषय नहीं, बल्कि सभ्यतागत दायित्व है।

डॉ. कृष्ण गोपाल

धर्म से अर्थ तक: भारत की आर्थिक दिशा का प्रतिमान

भारत की संस्कृति में अर्थ की व्यवस्था धर्म के प्रकाश में की गई है। यह केवल अपने नहीं, सबके कल्याण के लिए है। एक भावपूर्ण विश्लेषण

समाज के अधिकांश क्षेत्रों को अर्थायाम प्रभावित करता है। अर्थ का प्रभाव और अभाव दोनों ही हानिकारक है। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ कहे गए हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम की कल्पना धर्म के प्रकाश में ही की गई है। धर्म का अर्जन, नियोजन एवं विनियोग, यह सब सत्य, निष्ठा और प्रामाणिकता के साथ लोकमंगल की भावनाओं को ध्यान में रख कर किया जाना ही, हमारी सनातन परंपरा का अंग है।

जब हम हिंदू दर्शन की बात करते हैं तो उसमें हिंदुओं का आर्थिक दर्शन भी जुड़ा रहता है। यद्यपि कुछ सामान्य सी बातें ऐसी हैं, जो लोगों के मन में बहुत गहराई से बैठी हैं। हिंदू का मन किसी को भी भूखा देख कर व्यथित हो जाता है। इसलिए भोजन सभी को मिलना चाहिए, ये पहली सामान्य दृष्टि हिंदू दर्शन की है। हिंदू समाज इतने अधिक भंडारे चलाता है, स्थान-स्थान पर अन्न क्षेत्र चलाता है, क्योंकि किसी को भी भूखा देखना उसको सुहाता नहीं। पंचतंत्र में कहा गया है-

बुभुक्षितः किं न करोति पापं क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।
आख्याहि भद्रे प्रिय-दर्शनस्य न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम् पंचतंत्रः 4-16

अतः प्रत्येक प्राणी को भरपेट भोजन मिलना चाहिए। आगे यह भी कहा गया कि उपभोग पर नियंत्रण बनाए रखो। यानी भोग भी त्यागमय हो।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

अर्थात जड़-चेतन प्राणियों वाली यह सृष्टि परमात्मा से व्याप्त है। मनुष्य इसके पदार्थों का आवश्यकतानुसार भोग करे, परंतु उनका संग्रहण इस भाव से करे कि "यह सब मेरा नहीं है"। यह एक दूसरा भाव जो समाज में अपने आप बहुत गहरा बैठा है- सब कुछ परमात्मा का ही है। मेरे पास जो भी कुछ है, वह मेरा नहीं है। धरती सबकी है, हम धरती के सेवक मात्र हैं। सारी सृष्टि कहीं- न- कहीं एकात्म है, सब जुड़े हुए हैं- एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा। इन बातों को बड़ी सरलता से हिंदू मन ने स्वीकार किया और नीचे तक पहुँचाने का प्रयत्न किया कि कैसे सब एकात्म है।

मैं एक कथा पढ़ रहा था। उस कथा में एक व्यक्ति ने कहा, "आप कहते हैं कि भगवान विष्णु क्षीर सागर में विराजमान रहते हैं, लेकिन सागर का पानी तो खारा है।" दूसरे सज्जन ने तुरंत जवाब दिया, "वह क्षीर सागर समुद्र का ही है, वह दूध का ही भरा हुआ सरोवर है। मेघ कैसे उठता है, हवा उसको मानसून में बदलती है, बरसात सारी धरती पर होती है, घास और फसल उगते हैं, दाने-दाने में दूध आ जाता है, गाय के स्तन में दूध आ जाता है। यह समुद्र से आया हुआ जल है, इसलिए हमने क्षीर सागर कहा है।" कितनी सरल भाषा में, ये एकात्म बोध हमारे यहाँ कराया गया। सारी धरती एक कुटुंब ही है और ये हर एक हिंदू को लगता है। हमने कभी भी अपने देश की भौतिक संपदाओं का महिमामंडन नहीं किया। बल्कि त्याग ही अपने आप महिमामंडित हुआ।

पूज्य दलाई लामा जी ने एक स्थान पर लिखा है, जब कभी धन-दौलत महिमामंडित होने लगे तो आप समझ लीजिए कि समाज के टोटल वैल्यू सिस्टम में कुछ गंभीर समस्या आ गई है। धन के प्रति हमारा दृष्टिकोण सदैव एक ही रहा। वैदिक ऋषियों ने पूछा - "मा गृधः कस्यस्विद् धनम्" - अर्थात् ये धन किसका है? ये शाश्वत

प्रश्न हमारे देश में सबके सामने खड़ा है। ये ध्यान रखो कि तुम्हारे पास जो कुछ है, वह परमात्मा का ही है। धर्म के शाश्वत प्रकाश में ही समाज की यह धारणा बनी। इसीलिए हमारे समाज ने बौद्धिक उन्नति और पारलौकिक उन्नति दोनों को मिला कर आगे बढ़ना तय किया।

समुत्कर्ष नि:श्रेयस

समुत्कर्ष माने भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी। 'यतो अभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि: स: धर्म:', जिससे दोनों प्राप्त होते हैं, वही धर्म है। आर्थिक चिंतन अकेले में नहीं होता है। आर्थिक चिंतन समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। पूरे समाज पर इसका प्रभाव पड़ता है और इसलिए यह विचार आया कि संपूर्ण धरती सुखमय हो। संपूर्ण धरती का आनंद और मेरा सुख, ये दोनों अलग-अलग नहीं है। संपूर्ण धरती का सुख-आनंद और मेरा सुख-आनंद, दोनों आपस में गुथे हुए हैं। अविभाज्य हैं। किसी भी सिक्के के दो पहलू होते हैं। एक अप्रभावी हुआ तो दूसरा मूल्यहीन हो जाएगा। हमारा यह सनातन दर्शन हजारों वर्षो से चला आ रहा है।

तस्या: पृथिव्या लाभपालनोपाय:
शास्त्रमर्थशास्त्रमिति॥
पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि॥
पूर्वाचार्यै: प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्य
एकं इदं अर्थ-शास्त्रं कृतम् इति॥

जब चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना प्रारंभ की, तो पहला ही श्लोक वे लिखते हैं - "पृथिव्या लाभे पालने च", अर्थात यह जो शास्त्र लिखा जा रहा है, इसका मौलिक उद्देश्य यह है कि पृथिव्या - अर्थात पूरी पृथ्वी के लाभ की पालना हो सके। यानी ये जो नीतियाँ बनेंगी वे पूरी धरती के लाभ को, सबके सुख, सबके हित को ध्यान में रखते और उसका संरक्षण करते हुए अपने को आगे बढ़ाने वाली बनेंगी।

आगे वे यह भी कहते हैं कि यह जो शास्त्र बन रहा है, ऐसा नहीं है कि इसे मैं बना रहा हूँ। यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यै: प्रस्थापितानि। पहले के आचार्यो ने इसे स्थापित किया हुआ है। उससे संपूर्ण पृथ्वी का मंगल हो। आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व विष्णुगुप्त यह बता रहे थे। यह जो एकात्म बोध है, संपूर्ण पृथ्वी के लिए है। इसकी संकल्पना में हमारी सनातन दृष्टि है- उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में सत्त्व ज्ञान की बात करते हुए कहा कि "अविभक्तं विभक्तेषु। तज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।" सात्विक ज्ञान वह है, जो सभी में एकत्त्व को देखता है। हमारे वैदिक ऋषियों को 'मंत्रद्रष्टार:' कहा गया है। उन्होंने जो सनातन मौलिक ज्ञान हमें दिया, उसमें एकात्म बोध भी है और सारे विश्व का कल्याण भी।

एकत्व का यह आधारभूत दर्शन ही अपनी मातृभूमि का परमवैभव और समस्त भूमंडल का आनंद उत्पन्न करने वाला दर्शन है। इस मौलिक दर्शन के प्रकाश में, हम सभी संगठनों को अपने-अपने क्षेत्रों में विचार करते हुए, कंधे से कंधा मिलाकर सबको आगे बढ़ना है। इसी मौलिक दर्शन के प्रकाश में शिक्षा भी हो, उद्योग भी हो, हमारे घरों की परंपराएं भी आगे बढ़ें। समाज जीवन का आचार, विचार, व्यवहार सब कुछ इस मौलिक दर्शन के प्रकाश में आगे बढ़े। इसके लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं दत्तोपंत ठेंगड़ी के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए।

एकत्व का यह आधारभूत दर्शन ही अपनी मातृभूमि का परमवैभव और समस्त भूमंडल का आनंद उत्पन्न करने वाला दर्शन है। इस मौलिक दर्शन के प्रकाश में, हम सभी संगठनों को अपने-अपने क्षेत्रों में विचार करते हुए, कंधे से कंधा मिलाकर सबको आगे बढ़ना है। इसी मौलिक दर्शन के प्रकाश में शिक्षा भी हो, उद्योग भी हो, हमारे घरों की परंपराएं भी आगे बढ़ें। समाज जीवन का आचार, विचार, व्यवहार सब कुछ इस मौलिक दर्शन के प्रकाश में आगे बढ़े। इसके लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं दत्तोपंत ठेंगड़ी के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए

भारत का महान वैभव

देश पर विचार करते समय इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना भी जरूरी है।

ऐंगस मेडिसन ने 'द वर्ल्ड इकोनॉमी: हिस्टोरिकल स्टैटिस्टिक्स' नामक पुस्तक में सारी दुनिया के देशों के बारे में लिखा है। उनके अनुसार 500 वर्ष पूर्व विश्व की जीडीपी में भारत की भागीदारी 34% तक थी। सत्रहवी-अठारहवीं शताब्दी तक यह भागीदारी घटकर 24% हो गई। रोम के प्रसिद्ध लेखक प्लिनी लिखते हैं - रोम के लोग भारत के सामानों का इतना अधिक उपभोग करते हैं कि हमको करोड़ों सेस्टर्स (रोम की मुद्रा है) भारत को भेजनी पड़ती है। ए.एल. बाशम अपनी पुस्तक 'द वंडर दैट वाज इंडिया: अ सर्वे इन द कल्चर ऑफ द इंडियन सब-कंटिनेंट बिफोर द कमिंग ऑफ द मुस्लिम्स' में लिखते हैं कि भारत हर चीज का निर्यात करता है।

"यह संपत्ति हिंदुओं के विशाल और विविध उद्योगों द्वारा निर्मित थी। लगभग हर प्रकार का निर्माण या उत्पाद, जो सभ्य संसार में ज्ञात था - मनुष्य के मस्तिष्क और हाथों की लगभग हर प्रकार की रचना, जो कहीं भी विद्यमान थी और अपनी उपयोगिता या सुंदरता के कारण मूल्यवान मानी जाती थी - वह बहुत पहले से भारत में निर्मित होती आ रही थी।

भारत यूरोप या एशिया के किसी भी अन्य राष्ट्र की तुलना में कहीं अधिक बड़ा औद्योगिक और विनिर्माण राष्ट्र था। उसके वस्त्र-कपास, ऊन, लिनन और रेशम के करघों से बने उत्कृष्ट उत्पाद-पूरे सभ्य संसार में प्रसिद्ध थे। उसकी अनुपम आभूषण-कला और हर सुंदर रूप में तराशे गए बहुमूल्य रत्न भी उतने ही विख्यात थे। उसकी मिट्टी की वस्तुएँ, चीनी-मिट्टी के बर्तन और हर प्रकार, गुणवत्ता, रंग और सुंदर आकार की सिरेमिक कृतियाँ भी प्रसिद्ध थीं। लोहे, इस्पात, चाँदी और सोने में उसकी उत्कृष्ट धातुकृतियाँ भी जगप्रसिद्ध थीं।

उसकी वास्तुकला महान थी। उसके अभियांत्रिकी कार्य महान थे। उसके व्यापारी, उद्योगपति, बैंकर और वित्तकार अत्यंत प्रतिष्ठित थे। वह केवल सबसे बड़ा जहाज-निर्माण करने वाला राष्ट्र ही नहीं था, बल्कि उसका स्थल और समुद्र दोनों मार्गों से व्यापक व्यापार और वाणिज्य था, जो सभी ज्ञात सभ्य देशों तक फैला हुआ था। ऐसा था वह भारत, जिसे अंग्रेजों ने अपने आगमन के समय पाया।"

[विल ड्यूरेंट के उद्धरणानुसार]

नि:संदेह, जे.टी. संडरलैंड ने भारत के मसाले, भारत के परफ्यूम, आयुर्वेदिक औषधियों, जानवर, पक्षी, टिंबर का उल्लेख नहीं किया है। ये भी निर्यात होता था। इसका उल्लेख ए.एल. बाशम ने अपनी पुस्तक में किया है। हर क्षेत्र में भारत बड़े औद्योगिक सामर्थ्य वाला देश था। आयरन, सिल्वर, गोल्ड, बड़े-बड़े शिप बनाने का काम.. सब यहाँ होता था।

जब भारत संपन्न था, दुनिया का हर देश भारत के साथ व्यापार करना चाहता था और अपने-अपने देश में कंपनी बनाता था। पुर्तगाल, नीदरलैंड्स, डेनमार्क, फ्रांस, ऑस्ट्रिया यूरोप के कम से कम 15 देशों की कंपनियों का व्यापार भारत के साथ था। मेगस्थनीज, फाह्यान, मार्को पोलो, फ्रांस्वाँ बर्नियर इन सबने भारत के व्यापारियों के बारे में लिखा है। भारत के व्यापारी सत्यनिष्ठ हैं, सुबुद्ध हैं, धोखा नहीं देते, जो एग्रीमेंट करते हैं उसको तोड़ते नहीं, प्रामाणिकता से सामान देते हैं। अर्थात, भारत वैभव संपन्न तो था ही, नैतिकता, प्रामाणिकता और सत्यनिष्ठा में भी इसका कोई मुकाबला नहीं था। एक ओर भौतिक समृद्धि थी और दूसरी ओर वे आध्यात्मिक भाव जो सत्यनिष्ठा को स्थापित करते थे। दोनों मिल कर चलते थे।

इस्लाम का आक्रमण, एक लंबा अध्याय है। इसने एक बार हमारे सारे शोधकार्यों और बड़े विश्वविद्यालयों को क्षति पहुँचाई। दूसरे देशों से हमारा संपर्क और व्यापार तो बाधित हुआ ही, शोधकार्यों में भी भारत पिछड़ गया। अंग्रेजों ने भी हर तरह से भारत को बर्बाद करने की कोशिश की। वस्तुस्थिति जानने के लिए दादाभाई नौरोजी की पुस्तक 'पावर्टी ऐंड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया' और रोमेश चंद्र दत्त का 'द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल' (दो वॉल्यूम) पढ़ी जानी चाहिए। भारत के सामान पर डबल चुंगी लगाना, व्यापार पर प्रतिबंध लगाना, भारत का पैसा विदेश भेजना... इस तरह भारत को गरीब बनाया गया। यहाँ तक कि एक समय अंग्रेजों की लगान की त्रासद नीति के चलते लोगों ने खेती भी छोड़ दी थी।

सन् 1947 के बाद भारत में उन्नति तेजी के साथ हुई। सबसे उल्लेखनीय उन्नति कृषि क्षेत्र में हुई। साठ के दशक में भारत केवल एक करोड़ टन गेहूँ पैदा करता था और एक करोड़ टन गेहूँ बाहर से मंगाता था। आज हम लगभग 12 करोड़ टन गेहूँ पैदा करते हैं। तब भारत कुल मिलाकर केवल पांच-छह करोड़ टन खाद्यान्न पैदा करता था और आज लगभग 35 करोड़ टन से अधिक खाद्यान्न पैदा करता है। दूध, शक्कर, सब्जी और फल उत्पादन में नंबर पहले या दूसरे नंबर पर है। स्टील के उत्पादन में दूसरे नंबर पर है

गौरव की ओर भारत की यात्रा

सन् 1947 के बाद भारत में उन्नति तेजी के साथ हुई। सबसे उल्लेखनीय उन्नति कृषि क्षेत्र में हुई। साठ के दशक में भारत केवल एक करोड़ टन गेहूँ पैदा करता था और एक करोड़ टन गेहूँ बाहर से मंगाता था। आज हम लगभग 12 करोड़ टन गेहूँ पैदा करते हैं। तब भारत कुल मिलाकर केवल पांच-छह करोड़ टन खाद्यान्न पैदा करता था और आज लगभग 35 करोड़ टन से अधिक खाद्यान्न पैदा करता है। दूध, शक्कर, सब्जी और फल उत्पादन में नंबर पहले या दूसरे नंबर पर है। स्टील के उत्पादन में दूसरे नंबर पर है। फार्मा सेक्टर में हमारी अच्छी स्थिति है। सॉफ्टवेयर, मिसाइल, सैटेलाइट इन सबमें हम अच्छी स्थिति में पहुँच गए हैं। भारत के डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, तकनीशियन और प्रबंधकीय क्षमता के लोग आज दुनिया में अच्छे स्थानों पर हैं। इसरो, डीआरडीओ, सीएसआईआर, आईएआरआई, आईसीएमआर इन सबने भी अच्छी खोज की है। देश की जीडीपी के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ रही है। आज हम लगभग 75% साक्षरता पर आ गए और अनेक बीमारियों को अपने देश से खत्म कर चुके हैं।

वर्तमान विकास मॉडल की दयनीय स्थिति

हमने विकास के जिस मॉडल को अपने देश के लिए चुना, उससे नाना प्रकार की समस्याएँ खडी हो गईं। कमाने की पात्रता रखने वाली आबादी लगभग 62 करोड़ है। बाकी ऐसे बुजुर्ग या बच्चे हैं, जो कमाई में सहयोग नहीं कर सकते। इन 62 करोड़ लोगों में 82 से 85 प्रतिशत ऐसे हैं, जिनकी मासिक आमदनी ₹10,000 से कम है। इनमें भी 5000 से कम मासिक आय वाले दस करोड़ हैं। कुल मिला कर चालीस करोड़ लोग ऐसे हैं, जो 5000 से 10,000 तक कमाते हैं और दस करोड़ लोग ऐसे हैं जो 5000 से कम कमाते हैं। ये सभी आंकड़े सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय द्वारा पीरियाडिक लेबर फोर्स सर्वे में जारी किए जा चुके हैं। जीडीपी तो बढ़ रही है, लेकिन ये जो 82% लोग हैं, उनकी हालत कैसी है? पूँजी तो कुछ लोगों तक सीमित होकर रह गई है। देश में एक परसेंट लोग ऐसे हैं, जिनके पास 40% से ज्यादा समृद्धि है। अर्थात 1% के पास टोटल जीडीपी का 22-24% आ जाता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि हमने विकास कुछ क्षेत्रों तक सीमित कर दिया। मुंबई, बंगलौर, चेन्नई, अहमदाबाद, कोलकाता, दिल्ली, हैदराबाद, सूरत आदि ऐसे कुछ स्थान हैं, जहाँ विकास हुआ और देश के जो शेष 7 लाख गाँव हैं, 7000 विकास खंड हैं, उनका क्या हुआ? मजबूरन वहाँ से लोग हट कर उन शहरों की ओर चल देते हैं। इस तरह 75 वर्षों में 20% आबादी गाँवों से शहरी क्षेत्र में चली गई और शहरों की आबादी अब 37% हो गई, जो सन 1950 में 16% थी। दुखद बात यह कि इसमें से दस करोड़ लोग मलिन बस्तियों में आ गए। भारत

में मलिन बस्तियों की आबादी 9 से 10 करोड़ के बीच है।

इनमें अच्छी नौकरियाँ कुछ ही लोगों को मिल पाती हैं। 80 से 85% लोग एक छोटे से घरौंदे में रहने लगते हैं। जहाँ न कोई वातावरण है, न सुरक्षा, न संस्कार, न स्वास्थ्य और न ही कोई अच्छी आमदनी की उम्मीद। केंद्रीय विकास का जो मॉडल बना, उसका ये परिणाम है। इस तरह श्रमिक प्रवासी बन जाते हैं। कृषि अलाभकारी होती चली गई। उसके बहुत सारे कारण है। यदि हर 100-200 गाँवों के बीच किसी एक स्थान का विकास कर दिया जाता तो वहाँ लोगों को रोजगार मिलता। फिर बड़े शहरों की ओर केवल उच्च शिक्षित लोग जाते। आज हर वर्ष, लगभग 1.25% ग्रामीण लोग शहर की ओर जाते हैं। लेकिन जब कोई काम नहीं मिलता, तो आधी जनसंख्या वापस गाँव आ जाती है।

राष्ट्रीय विचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहा करते थे कि हर खेत को पानी, हर हाथ को काम मिलना चाहिए। आज भी देश में 54% कृषि योग्य भूमि असिंचित है। जबकि हमारा 40% जल समुद्र में चला जाता है। हम 1.5 लाख करोड़ रुपए की दाल और खाद्य तेलों का आयात करते हैं, लेकिन ग्रामीण लोग बेरोजगार हैं। इस मॉडल ने एक बड़े वर्ग को इतना गरीब बना दिया है कि वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रख सका। आप एक रिपोर्ट देख सकते हैं। भारत में 15 से 49 वर्ष उम्र की जो महिलाएँ हैं, उनमें 57% एनीमिक हैं। पाँच साल से कम उम्र के बच्चों में 67% एनीमिक हैं। हमारे देश के छह वर्ष से कम आयु वाले साढ़े आठ करोड़ बच्चे ऐसे हैं जिनका विकास अवरुद्ध हो गया है। 35% बच्चों के मस्तिष्क का विकास नहीं हो रहा है। ये संख्या कम नहीं है। हम भारत का कौन-सा भविष्य बनाएंगे? ये देश कहाँ जाएगा? कई राज्यों में तो 50% बच्चों का विकास अवरुद्ध है। महाराष्ट्र के नंदुरबार जिले में 68% बच्चों का विकास अवरुद्ध है। झारखंड के सिंहभूमि जिले में 66% और उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिले में 59% बच्चे इसी श्रेणी मे आते हैं। ये आंकड़े दुखद हैं।

इसलिए हमको विकेंद्रीकृत विकास की ओर आगे बढ़ना होगा और इसमें भी हमें अपने एमएसएमई यानी माइक्रो, स्मॉल एंड मीडियम इंटरप्राइजेज पर ध्यान केंद्रित करना होगा। ये बढ़ते हुए दूर तक चले जाते हैं। गाँव के निकट जाकर लोगों को रोजगार देते हैं। जो समस्त उद्योगजन्य रोजगार है उसका 90% एमएसएमई देता है। देश में इनकी 6 करोड़ इकाइयाँ हैं। निर्यात में इसकी भागीदारी 46% है, कुल औद्योगिक उत्पादन में इसकी भागीदारी 30% है, जीडीपी में इसका योगदान 30% है, लेकिन ये बड़े संकट से गुजर रहा है। क्योंकि बड़े उद्योगों के आने से इनका क्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है।

देश में एक बड़ा वर्ग है, जो छोटी दुकानें चलाता है। कोई फुटपाथ पर फड़ लगाता है, कोई रेहड़ी लगाता है, कोई फेरी लगाता है। कुल मिला कर लगभग 4.5 करोड़ लोग हैं। ये संकट में आने वाले हैं। ये आत्मनिर्भर हैं। इन्हें किसी की ज्यादा जरूरत नहीं है। लेकिन आज बड़ी कंपनियां आ रही है। वॉलमार्ट, बिग बाजार, अमेजन, रिलायंस रिटेल, फ्यूचर ग्रुप, टाटा ग्रुप, बिग बास्केट, फैशन ऐंड रिटेल - लंबी सूची है। एक बड़ी कंपनी आती है। बड़ा शोरूम खोलती है और एकदम से 2000 दुकानें साफ हो जाती है। अमेरिका जैसा देश इनसे परेशान है। भविष्य की योजना में इनको कैसे हम लोग संभाल करके रखेंगे? छोटी दुकानें चलाने वालों का क्या होगा?

हमें विकास का ऐसा प्रारूप चुनना होगा जिसमें रोजगार पूरे देश में फैला हुआ हो। माइग्रेशन कम से कम हो। जब भी हम भविष्य का अपना प्रारूप तैयार करें तो उसमें 140 करोड़ लोग, 7 लाख गाँव, 7 हजार छोटे कस्बे और देश की विविधता, यह सब हमारे ध्यान में रहे। हम प्रति-दिन सारी धरती पर 2.5 करोड़ टन कोयला जलाते हैं और 2 करोड़ टन हम तेल खर्च करते हैं। यह 2.5 करोड़ टन कोयला बनाने में 10,00,000 वर्ष लगे थे। इससे तीन गुना कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में आ जाती है। लगभग 10 से 12 करोड़ टन कार्बन डाई ऑक्साइड प्रति दिन वायुमंडल में आ रही है।

ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रहा है। आजकल आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रयोग हो रहा हैं। उसके अलग प्रकार के दुष्परिणाम होंगे। हमको भारत की परिस्थितियों में अपनी जनसंख्या, अपनी आवश्यकता, अपनी पारिस्थितिकी. अपने विचार, अपनी सामाजिकता, अपनी संस्कृति, अपने आध्यात्मिक भाव... इन सबको ध्यान में रखकर अपने विकास का प्रारूप तैयार करना होगा। देश को कौन-सी तकनीक चाहिए, कौन-सी नहीं चाहिए, कब चाहिए, उसके क्या परिणाम निकलेंगे, यह सब सोचकर ही आगे बढ़ना होगा। आज कैसे परिवार टूट रहे हैं, कैसे लोग व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं, सबका व्यक्तिगत अहंकार बढ़ रहा है, असहिष्णुता बढ़ रही है... यह सब सोचना होगा।

हमने कभी विश्व को बाजार नहीं माना था। हमारे लिए विश्व एक परिवार है। केवल लाभ कमाना उचित नहीं है। मनुष्य की भावनाएं समाप्त न हो जाएँ, संवेदनाएं समाप्त न हो जाएँ, यह ध्यान रखना होगा। पश्चिम इन बातों को महत्त्व नहीं देता। अमेरिका में एक फार्मास्यूटिकल्स कंपनी ने बच्चों की एक गंभीर बीमारी स्पाइनल मस्कुलर एट्रोफी के उपचार के लिए एक इंजेक्शन बनाई। नाम है जोलजेंस्मा। इसकी कीमत ₹17 करोड़ है। दुनिया में बीस लाख बच्चे इसके पेशेंट है। ब्लड कैंसर की एक दवा है - आइब्रूटिनिब। केवल दो ग्राम के एक डोज की कीमत 4.5 लाख रुपया है। भारत आज भी सबसे सस्ती दवाइयाँ देता है। क्योंकि हमने पूरे विश्व को एक परिवार माना है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बड़ा अच्छा व्याख्यान दिया था। वे कहते हैं कि पश्चिमी जगत को लूटने की जो आदत लग गई है, ये पुरानी है, क्योंकि ये परिस्थिति बहुत खराब थी? छोटी जमीन इनके पास रहती थी, छह सात महीने उस पर कुछ उत्पादन होता था। इसलिए मौका देखकर दूसरों की उपजाऊ जमीन को लूटने जाते थे। अपनी जमीन को बचाते थे। एक साथ मिल कर आक्रमण करना, मिल कर लूटना, मिल कर कब्जा करना, मिल कर प्लानिंग करना, इनको आ गया, किंतु इनकी लूटने की प्रवृत्ति नहीं गई। तब मिलकर के लूटते थे और अब मिलकर के एमएनसी बना कर लूटते हैं।

ये रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व लिखा था। पश्चिम के लोगों का यह स्वभाव है। इसलिए वे 1 करोड़-2 करोड़ की एक डोजकी दवाई बेच सकते हैं।

दुनिया के बच्चे मरते हैं तो मरने दो, इससे उनको कोई बहुत दिक्कत नहीं है। इसलिए उनके जो मॉडल बनते हैं, विकास का जो स्वरूप बनाते हैं, वे इसी हिसाब से बनाते हैं। उनकी संवेदना, करुणा, दया, प्रेम, बंधुत्व जैसे शब्द उनके मैनेजमेंट के कोर्सेज में हैं ही नहीं। उन्हें तो सिर्फ अपनी कंपनी चलानी है। हमारे किसी भारतीय व्यापारी के पास जाइए तो उसके लिए शुभ-लाभ का महत्त्व है, यानी शुभ मार्ग से आने वाला लाभ। इसलिए हमारे यहाँ जो मॉडल बनेगा वह आध्यात्मिक धरातल पर बनेगा। पश्चिम का प्रारूप दुनिया के लिए विनाशकारी है। ये सब समझ गए। सैकड़ों नोबल विजेता, वैज्ञानिक, साहित्यकार, समाज विज्ञानी इस बात से परेशान हैं। ये विश्व को जो प्रतिमान मिला है, ये विनाशकारी ही है और कुछ नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि ये मन भी सनातन है। अर्थात ये भोगवादी मन भी सनातन है। गीता के सोलहवें अध्याय में लिखा है-

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्- यायेनार्थसञ्चयान्॥

अर्थात यह मन भोग के लिए अन्याय से अर्थ का संचयन करता है। अन्याय से धन कमाता है।

शिक्षा हमारा पहला कर्तव्य है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने लिखा है कि जो शिक्षा समाज के अंदर बालक को संस्कार देने के लिए है, जो काम समाज के हित का हो, उसके लिए शुल्क लिया जाए, ये तो उल्टी बात है। इसके कारण जो बच्चे शुल्क देने में असमर्थ हैं, वे तो पढ़ना ही बंद कर देंगे। क्या समाज इस स्थिति को सहन करेगा? पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पैसा नहीं लेते। हम जानते हैं कि पेड़ पर हमें फल मिलेंगे। व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के लिए काम करेगा, किंतु जो व्यवस्था बचपन से हमें व्यक्तिवादी बनाती हो, उससे समाज की अवहेलना करने वाले निकलें, तो आश्चर्य क्यों? भारत में पहले कोई भी शिक्षा शुल्क वाली नहीं थी। अंग्रेजों ने शुल्क लगाया। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी का कहना बहुत स्पष्ट है। बच्चे को संस्कार देने का समय है। इस समय शुल्क मत लो। हम शुल्क लेकर उसको पढ़ाएंगे तो वह समाज के लिए क्या देगा? क्या समाज के लिए कोई भावना उसमें जगेगी? ये अर्थायाम के अंतर्गत ही आएगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी समाज की जो कल्पना की थी, उसके बारे में उन्होंने लिखा था- 'हमको पूर्ण स्वावलंबी देश के बारे में विचार करना है और अपने महान सांस्कृतिक मूल्यों को संभाल कर रखने वाला समाज, नैतिक मानदंडों को साथ लेकर चलने वाला समाज, आध्यात्मिक भावों की आत्मा को लेकर चलने वाला समाज, आर्थिक रूप से संपन्न भारत आए और अपनी विशिष्ट पहचान को संभाल कर रखे। मुझे दो साल पहले शांति निकेतन जाने का अवसर मिला था। हमने पूछा, विश्वभारती के निर्माण में उन्होंने कैसे-कैसे कार्य किया? आपको जानकर आश्चर्य होगा कि रवींद्र नाथ टैगोर ने अपने बेटे को अमेरिका भेजा था। अमेरिका जाकर कृषि पर पीएचडी करो और आकर मुझको बताओ। वहाँ उनका बेटा गया, उसने कृषि विषय पर पीएचडी की। बेटे के आने के बाद गुरुदेव ने प्रयोग शुरू किए कि हमारा भारत कैसा बने। ऐसा गाँधी जी ने भी विचार किया, दीनदयाल जी ने भी विचार किया। इन सब लोगों ने भविष्य के भारत पर विचार किया। इनमें सबका आधार स्वत्व था, सनातन दर्शन था, धर्म था। इसलिए भविष्य के मार्ग का प्रारूप हमें अपने देश की परिस्थितियों के अनुरूप तैयार करना होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी समाज की जो कल्पना की थी, उसके बारे में उन्होंने लिखा था- 'हमको पूर्ण स्वावलंबी देश के बारे में विचार करना है और अपने महान सांस्कृतिक मूल्यों को संभाल कर रखने वाला समाज, नैतिक मानदंडों को साथ लेकर चलने वाला समाज, आध्यात्मिक भावों की आत्मा को लेकर चलने वाला समाज, आर्थिक रूप से संपन्न भारत आए और अपनी विशिष्ट पहचान को संभाल कर रखे। मुझे दो साल पहले शांति निकेतन जाने का अवसर मिला था। हमने पूछा, विश्वभारती के निर्माण में उन्होंने कैसे-कैसे कार्य किया

हमारे पास दुनिया की सर्वाधिक उर्वर जमीन है। आज भी हम कम से कम केमिकल डाल कर 36 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन कर रहे हैं। इसलिए अपना विकेंद्रीकृत प्रारूप हो, अपनी संस्कृति, अपने समाज, अपने विचार, अपने धर्म, इन मानदंडों पर लिखा हुआ हो। हम दुनिया के सामने मैत्री और आत्मीयता का भाव लेकर आगे बढ़ सकें, ऐसे भारत का निर्माण करें। हमें मन पर नियंत्रण करने वाला समाज चाहिए। दोनों बातें साथ-साथ चलेंगी। धन संपदा का अर्जन भी होगा और संस्कारयुक्त उपभोग भी। 'कस्यस्विद्धनम्' धन किसका है, 'तेन त्यक्तेन' पहले दे दे, बाद में उपभोग कर। हमारे सामने रतन टाटा जी का जीवन है। सामान्य छोटी-सी गाड़ी में यात्रा करते थे। एक दिन हमको नितिन जी ने एक संस्मरण सुनाया। रतन जी हमारे घर आने वाले थे तो हमने उनको लोकेशन भेज दिया था, लेकिन उनका फोन आया? अरे भाई, नितिन जी, आपका घर हमको नहीं मिल रहा है। कहाँ है? तो नितिन जी ने कहा आप अपना टेलीफोन ड्राइवर को दीजिए। अरे भाई गाड़ी तो हम खुद चला रहे हैं। वे अपना ड्राइवर नहीं रखते थे। जीवन भर छोटी सी गाड़ी और अपने छोटे से फ्लैट में रहे। लेकिन काशी में कैंसर अस्पताल के लिए लगभग 1500 करोड़ दिए। असम में 10 अस्पतालों के लिए लगभग 2000 करोड़ दिए। ये उनके जीवन का 'तेन त्यक्तेन' संदेश है।

महान वैज्ञानिक कलाम साहब का उदाहरण ले सकते हैं। वे अपने पास कितना सामान रखते थे, यह बात अनेक लोगों को मालूम है। अपने जीवन में मितव्ययी बनना बहुत आवश्यक है। हमारे अंदर मितव्ययी बनने की आदत आध्यात्मिक भाव के कारण ही प्रभावी होगी। हमने ऐसे प्रोफेसर लोगों को देखा है कि उनके जीवन में केवल एक

कोट था, उन्होंने जीवन में दूसरा कोट कभी नहीं बनवाया था। मैंने लगातार बीस-पचीस साल तक उनको एक ही कोट में देखा। अनेक लोगों को उन्होंने पीएचडी कराई, वे छोटे से मकान में रहते थे, लेकिन कभी कोचिंग में पढाने नहीं गए। मेरा धर्म, मेरा विचार इसकी अनुमति मुझको नहीं देता। ये हमारे धर्म की चेतना है। हमारी परंपरा के लिए ये भावना है।

आज विश्व हमसे ये अपेक्षा करता है कि कम से कम भारत तो उसको लेकर खड़ा हो जाए। हमारी सेवा की भावना को विश्व समझने लग गया है। हमारे आसन-प्राणायाम की ओर विश्व ध्यान से देखता है। हमारी परिवार व्यवस्था को विश्व ध्यान से देखता है। हम विश्व को दे सकते हैं। इसलिए मैं एक उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। आर्नोल्ड टॉयनबी ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस की जीवनी की भूमिका में एक वाक्य लिखा है। वे कहते हैं कि वर्तमान में जो भी सभ्यताएँ है, भौतिकवादी हैं। इसने दुनिया को निकट तो ला दिया, लेकिन दुनिया को एक अवश्यंभावी विनाश की ओर धकेल दिया है। खतरनाक मोड पर दुनिया आ गई है। अब केवल और केवल भारत की जनता, भारत के विचार, भारत की चेतना ही बचा सकती है। भारत के पास जो दृष्टिकोण है, वही बचा सकता है। वे लिखते हैं कि "यह पहले से ही साफ होता जा रहा है कि एक अध्याय जिसका आरंभ पश्चिमी तरीके से हुआ था, उसका अंत भारतीय तरीके से ही होना चाहिए। यदि मनुष्य जाति को स्वयं अपना ही सत्यानाश नहीं करना है तो। मनुष्यता के इतिहास के इस बहुत खतरनाक समय में, मानवता के पास बचने का जो एकमात्र तरीका है, वह भारतीय है... यहाँ हमारे पास वह नजरिया और जज्बा है जो मनुष्यता को एक साथ एक एकल परिवार में आगे बढ़ने में मदद कर सकता है - और, परमाणु युग में, खुद को खत्म करने का यही एकमात्र विकल्प है।

उन्होंने दो बातें कही हैं - यहाँ हमारे पास दृष्टिकोण और जज्बा है, भावना है। वह भावना धर्म की है, वो भावना हमारी महान संस्कृति की है, अध्यात्म की है। वे कहते हैं कि भावना के प्रकाश में एक अभिवृत्ति है। यहाँ के लोगों का एक व्यवहार है। ये दुनिया को एक परिवार के रूप में ले कर आगे बढ़ सकता है, जो दुनिया को विनाश से बचा सकता है। यही एकमात्र विकल्प है। लेकिन हम लोगों को ध्यान में रखना है, हम जिस ओर आगे बढ़ रहे हैं, वह भगवान की कृपा से ही हो रहा है। धर्म का संरक्षण, अपने देश का परम वैभव और विश्व का मांगल्य, इन तीनों को हम ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ते चलेंगे। यह सुनिश्चित है कि हम दुनिया के सामने एक नया विकल्प दे सकते हैं।

भारतीय विकल्प

आज के समय में पूरी दुनिया बहुत त्रस्त है। लेकिन एकदम से कोई विकल्प दिखता नहीं। क्योंकि कोई विचार भी करे, तो उसका अनुसरण करने वाले उनके पास लाखों लोग नहीं मिलते। भारत एक ऐसा देश है। हमने कोरोना में देखा है कि अनेक लोग अपनी गाड़ी में बाजरा-पानी लेकर निकलते थे। अरे! इन बेचारे कबूतरों के लिए दाना कौन डालेगा, उन कुत्तों के लिए रोटी कौन खिलाएगा, बंदर बेचारे चुपचाप बैठे हुए हैं, मनुष्य बाहर नहीं आ रहा है। नि:संदेह, कोरोना में भी सैकड़ों लोग दिल्ली में निकलते थे। यही भारतीयों की भावना है। कोरोना में बाहर आने जाने वाले लोगों के लिए हम लोग खाना भी दे देते थे और पैकेट भी दे देते थे ।

आपको एक घटना बताना चाहता हूँ। जब कोरोना में पूरब की ओर लोग बाहर जा रहे थे, तो मेरे पास समाचार आया। भाई साहब आगरा, मथुरा में लोग नंगे पैर जा रहे हैं, मई-जून का महीना है, बहुत गर्मी है, पैर जल रहे हैं, चप्पल नहीं है। आप कुछ चप्पल भिजवा दीजिए। हमने एक्शन शू वालों को फोन किया, भाई साहब दो-तीन हजार चप्पल भिजवा दो। उन्होंने कहा कि भाई साहब फैक्टरी बंद है किंतु किसी प्रकार भेजवा दूंगा। आपको सुनकर भी आश्चर्य होगा कि एक छह सात घंटे के अंदर उन्होंने 5000 चप्पल एक ट्रक में भर कर तुरंत भिजवा दिया। बाद में वहाँ जो चप्पल पहुंचा, उन लोगों को आश्चर्य हो गया कि एक-एक चप्पल 2000 का है, बहुत महंगा चप्पल है। मैंने उनसे पूछा कि कैसे चप्पल भिजवा दिए, उसका पैसा नहीं मिलेगा। इस भावना के प्रकाश में हमारे देश का एटीट्यूड है जिसको हम बदल सकते हैं। भौतिक मूल्यों के बारे में विश्व दुबारा चिंतन करे तो हम समझते हैं कि एक ऐसे प्रारूप की ओर हम बढ़ सकते हैं, जिसको विश्व की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संदर्भ-

1. मेडिसन, ए. (2007). द वर्ल्ड इकोनॉमी: हिस्टोरिकल स्टैटिस्टिक्स। पैरिस फ्रांस: अर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को-ऑपरेशन ऐंड डेवलपमेंट (ओईसीडी)
2. प्लिनी द एल्डर (1938). नैचरल हिस्ट्री (एच. रैकहैम, अनु.), कैंब्रिज, एम.ए.: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 77-79 के बीच प्रकाशित हुई)
3. बाशम, ए एल. (1954)। द वंडर दैट वाज इंडिया: अ सर्वे ऑफ द कल्चर ऑफ द इंडियन सब-कंटिनेंट बिफोर द कमिंग ऑफ द मुस्लिम्स। लंद, इंग्लैंड: सिडविक ऐंड जैक्सन
4. संडरलैंड, जे.टी. (1929)। इंडिया इन बॉण्डेज: हर राइट टु फ्रीडम। लंदन, इंग्लैंड: जॉर्ज एलन ऐंड अनविन
5. डूरंट, डॅब्ल्यू. (1930)। द केस फॉर इंडिया। न्यू यॉर्क, एनवाई: सिमॉन एंड शस्टर
6. सुंदरलाल, पी. (1939)। ब्रिटिश रूल इन इंडिया। इलाहाबाद, इंडिया: इंडियन नेशनल कांग्रेस
7. नौरोजी, डी. (1901)। पावर्टी ऐंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया। लंदन, इंग्लैंड: स्वान सॉनेंशीन एंड कंपनी
8. दत्त, आर.सी. (1902)। द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल: फ्रॉम द राइज ऑफ द ब्रिटिश पावर इन 1757 टु द एक्सेशन ऑफ क्वीन विक्टोरिया इन 1837 (खंड 1-2)। लंदन, इंग्लैंड: केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रूब्नर एंड कंपनी
9. टोफ्लर, ए. (1970)। फ्यूचर शॉक। न्यू यॉर्क, एनवाई: रैंडम हाउस
10. टैगोर, आर. (1917)। नेशनलिज्म। न्यू यॉर्क, एनवाई: द मैक्मिलन कंपनी

नरेश सिरोही

भारतीय कृषि और किसान: एक परिदृश्य

लागत की तुलना में कमाई का आकलन करें तो भारतीय किसान लगातार घाटे में चला आ रहा है और त्रासद सच यह है कि उसका यह घाटा हर साल बढ़ता ही चला जा रहा है। वस्तुस्थिति का एक तथ्यपरक अध्ययन

भारत की आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में कृषि का महत्त्व सर्वविदित है, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान लगभग 16% से 18% के आसपास रहता है , देश की कुल जनसंख्या की आधे से अधिक आबादी सीधे कृषि पर आधारित है और देश के लगभग 45% कार्यबल को रोजगार देने में सक्षम है। इसके अलावा उद्योग एवं सेवाओं का तीन चौथाई श्रम आज भी गाँव से आता है साथ ही सैनिक, अर्धसैनिक बलों की मुख्य कार्मिक शक्ति गाँव से ही प्राप्त होती है तथा देश के निर्यात में भी जितना अपेक्षित है उतना तो नहीं, लेकिन कृषि उत्पादों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत कृषि क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई है, इस तथ्य से भी कोई इनकार नहीं कर सकता है। कृषि क्षेत्र के इस सर्वांगीण विकास प्रगति के मुख्य कारक में बुवाई क्षेत्र का विस्तार, सिंचाई का विस्तार, चकबंदी सहित भूमि सुधार कानून की भूमिका, उत्पादकता में वृद्धि, अधिक उत्पादन वाली किस्म के बीजों का विकास, कृषि अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी का विकास व प्रयोग, उर्वरकों का उपयोग, कीटनाशकों का उपयोग तथा रोग नियंत्रण, न्यूनतम समर्थन मूल्य एवं खरीद आधारित कृषि मूल्य नीति, भंडारण की व्यवस्था, विपणन पद्धति में सुधार, पर्याप्त मात्रा में तो नहीं लेकिन पूंजी निवेश एवं ऋण व्यवस्था में वृद्धि और सुधार, प्रचार-प्रसार सेवाओं के द्वारा किसानों को जानकारी देना, ग्रामीण आधारभूत ढांचा सड़क, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा आदि रहे हैं।

हमारे कृषि के इस सर्वांगीण विकास को हरित क्रांति की संज्ञा दी गई, जहाँ आजादी के छठे दशक तक खाद्यान्न में आयातक देश थे, उस विषम परिस्थिति से निकलकर आज हम खाद्यान्न निर्यात करने की स्थिति में पहुँच रखने वाले देश बन चुके हैं। सन् 2023-24 में लगभग 52 अरब डॉलर का कृषि निर्यात किया गया और 2035 तक निर्यात लक्ष्य 100 अरब डॉलर निर्धारित किया गया है। भारत का पाँच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था 2030 तक बन जाना अनुमानित है जिसमें कृषि क्षेत्र द्वारा एक ट्रिलियन डॉलर का योगदान देने की संभावना को साकार करने लक्ष्य रखा गया है। परंतु इस भारी सफलता के बावजूद भी कुछ ऐसी खामियाँ रह गई जिसके कारण कृषि व किसान विभिन्न संकटों के दौर से गुजर रहा है। सकल घरेलू उत्पाद में आधे से अधिक आबादी का मात्र 16% योगदान, कृषि के क्षेत्र में जीवन यापन कर रहे किसानों की आर्थिक दुर्दशा को दर्शाता है। राष्ट्रीय आपदा रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों से पता चलता है कि 1995 से 2014 के बीच 2,96,438 किसानों ने खुदकुशी की है, नाबार्ड के ताजा आंकड़ों के अनुसार मौजूदा समय में किसानों पर देश के सभी तरह के बैंकों का 21 लाख करोड रुपए का कर्ज है यानी प्रति किसान 1.35 लाख रूपये है। सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद वर्तमान समय में एक किसान परिवार की खेती से रोजाना 150 रुपए से भी कम आमदनी है, नेशनल बैंक ऑफ रूरल एंड एग्रीकल्चर डेवलपमेंट की रिपोर्ट के अनुसार किसान परिवारों की खेती से औसत कमाई 4,476 रुपए है, रिपोर्ट के मुताबिक 2021-22 में प्रति किसान परिवार की सभी स्रोतों से मिलाकर मासिक आमदनी 13,661 रुपए थी। किसान परिवार इसमें से 11,710 रुपए खर्च कर देता है। इसका अर्थ यह है कि किसान परिवार हर माह 1,951 रुपए ही बचा पाता है। साथ ही हरित क्रांति में अपनाई गई कृषि प्रणाली के दुष्परिणाम भी अब सामने आ रहे हैं। इसकी चर्चा

भी आगे विस्तार से करेंगे।

भारत की वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने बजट भाषण की शुरुआत चार 'शक्तिशाली' विकास इंजनों की पहचान से की, जिनमें पहला कृषि है। इसलिए हमें कृषि क्षेत्र में पैदा हुई विसंगतियों के सभी कारणों को चिन्हित कर, उससे उपजी मौजूदा परिस्थितियों का बेबाकी से विश्लेषण करने तथा समग्र दृष्टि से विचार करते हुए, सूझ बूझ के साथ कृषि क्षेत्र व किसानों को विभिन्न संकटों से मुक्ति के उपाय खोजने की आवश्यकता है।

किसानों के प्रति सरकारों के उदासीन रुख और उसकी बनाई नीतियों की मार!

यह बात सब जानते हैं कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों द्वारा उत्पादित किए गए सामान के सापेक्ष मूल्य इस बात को निश्चित करते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था में होने वाली प्रगति का कितना भाग किस वर्ग अथवा समुदाय को मिलता है। यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मूल्य दरें अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र विशेष कर उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र के द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य की अपेक्षा सतत पिछड़ते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भी कृषि उत्पादों के मूल्य, दूसरे अन्य उत्पादों के मुकाबले सदैव कम रहे हैं, लेकिन 1947 के बाद भी सापेक्ष मूल्य नीति (Terms of trade) का रुख किसानों के अहित में रहा है, हर वर्ष कृषि उत्पादों के मूल्य दूसरे उत्पादों के मूल्यों के मुकाबले 82% से 94% के बीच रहे हैं, यानी किसान द्वारा बेचे जाने वाले उत्पादों से होने वाली कमाई उसके द्वारा खरीदे जाने वाले उत्पादों से लगातार कम होती चली गई। इस अहितकारी मूल्य प्रणाली के कारण अर्थव्यवस्था के अन्य वर्गों की अपेक्षा कृषकों को औसतन 12% प्रतिवर्ष घाटा उठाना पड़ा है। इसका पहला सीधा दुष्परिणाम यह हुआ की लगभग हर 7 वर्ष में कृषि में लगे प्रत्येक व्यक्ति की औसत आय, अन्य व्यवसायों के मुकाबले आधी होती चली गई, जिसका दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली सभी समुदाय की क्रयशक्ति में भारी ह्रास हुआ, और तीसरा परिणाम यह हुआ कि कृषि आर्थिक रूप से अलाभकारी व्यवसाय होता चला गया, जिसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण की गति भी घटती चली गई। ये मैं नहीं कहता, सरकार की अनेक रिपोर्ट यही बताती हैं। इसके विपरीत उद्योगों और उनके द्वारा विनिर्मित उत्पादों को नाना प्रकार के संरक्षण प्रोत्साहन एवं सुविधाएँ मिलती रहीं।

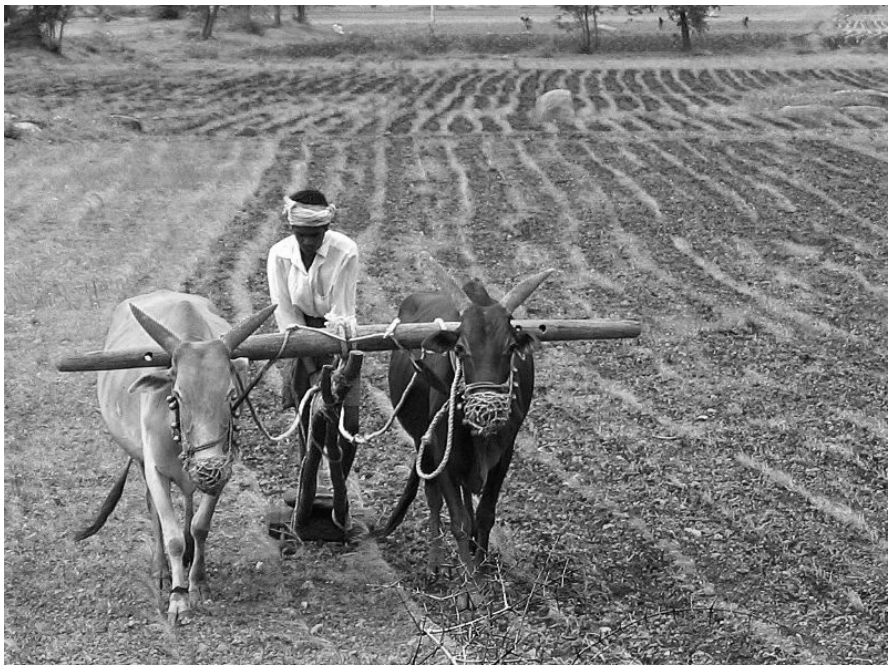

एक उदाहरण के माध्यम से इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के फर्क को आप भी समझ सकते हैं, मुझे अच्छी तरह याद है कि वर्ष 1970 में एक तोला यानी 12 ग्राम सोने का रेट सवा दो सौ (225) रुपए तोला था और गेहूं का रेट 76 रुपए कुंतल था यानी किसान 3 क्विंटल गेहूं बेचकर 12 ग्राम सोना खरीद सकता था। आज गेहूं का भाव 2275 रुपए प्रति क्विंटल और 12 ग्राम सोने के भाव लगभग 1.15 लाख रुपए है। दोनों के बीच का अंतर, आप हिसाब लगाइए, यानी किसान को आज 3 क्विंटल के स्थान पर लगभग 50 क्विंटल से अधिक गेहूं बेच कर 12 ग्राम सोना खरीदना पड़ेगा। और केवल इतना ही नहीं, सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह से लेकर औद्योगिक उत्पादों के अनेकों उदाहरण के माध्यम से भी इस गैर बराबरी को समझा जा सकता है। यह तथ्य सर्वविदित है कि किसी समुदाय की खुशहाली इस बात निर्भर करती है कि उसे अपने उत्पादन के मूल्य कैसे मिलते हैं। यदि सरकारी मूल्य नीति किसी समुदाय के प्रति अन्यायपूर्ण हो तो वह समुदाय कभी पनप नहीं सकता।

आम लोगों द्वारा चुनी हुई सरकारों का काम है, "देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए लोगों के बीच बढ़ती विषमता/असमानता की खाई को पाटने हेतु लोगों की आमदनी के फर्क को कम करके पूंजी का सही वितरण करना"। और सरकारों ने किया क्या है, इस पर जरा आप भी सोचिए!

आप देखेंगे कि आजादी के बाद से लगातार हर राजनैतिक दल अपने घोषणा -पत्र के माध्यम से मौजूदा इस गैर बराबरी को समाप्त करने के लिए एक "नई कृषि नीति" बनाने की घोषणा करता रहा है, लेकिन सत्ता में आने के बाद उसका यह वादा कभी पूरा नहीं हो पाया, इसका बड़ा कारण यह है कि कोई भी न्यायोचित कृषि नीति तब तक नहीं बन सकती, जब तक संपूर्ण ग्रामीण समाज के प्रति अभी तक जो गैर-बराबरी का व्यवहार होता रहा है, उसे समाप्त करने का दृढ़ संकल्प नहीं किया जाता। परंतु देश के भीतर निहित स्वार्थ इतने प्रबल है कि उनकी सहमति के बिना देश के नेताओं में इस गैर बराबरी के व्यवहार समाप्त करने का साहस नहीं है।

चक्रव्यूह में फसा भारत का किसान एक साथ कई तरह की चुनौतियों का सामना कर रहा है !

एक ओर किसान सरकारों के उदासीन रुख और उसकी बनाई नीतियों से, तो दूसरी ओर परिस्थितिजन्य समस्याओं जैसे कि भारत में घटता कृषि भूमि का दायरा और किसानों की घटती जोत का आकार, कृषि पर आश्रित आबादी का बढ़ता बोझ, जलवायु परिवर्तन के कारण खेती में बढ़ता जोखिम और प्राकृतिक संसाधनों के होते ह्रास से भी जूझ रहा है। इन्हें भी समझने की कोशिश करते हैं:-

1) भारत में कृषि भूमि का दायरा लगातार घट रहा है, कृषि मंत्रालय के आंकड़े बताते हैं कि 197-71 में भारत में लगभग 18.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि खेती के लिए उपयोग होती थी, जो 2020-21 में घटकर 14 करोड़ हेक्टेयर से भी कम रह गई है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक वर्तमान समय में, देश में किसान जोतों की संख्या 14.6 करोड़ से अधिक है और 88 फीसदी किसान एक हैक्टेयर से कम जमीन के मालिक हैं। देश में खेतों का औसत जोत का आकार जो वर्ष 1970-71 में 2.28 हेक्टेयर था, वो घटकर 1990-91 में 1.55 हेक्टेयर हो गया तथा वर्ष 2016-17 में औसत जोत का आकार 1.08 हेक्टेयर से घटकर 2021-22 में मात्र 0.74 हेक्टेयर रह गया है। यहाँ यह बताना जरूरी है कि इन आंकड़ों में (NSSO -2011 के अनुसार) एक बड़ा झोल है और वो यह है कि देश की कुल कृषि योग्य भूमि के लगभग 30% भू भाग पर 83% किसानों की निर्भरता है,जबकि 23.5 प्रतिशत भूभाग 10% किसानों के पास, 15.5 भूभाग 4% किसानों एवं 31 प्रतिशत भूभाग मात्र 3% किसानों के पास है। इसका मतलब यह हुआ कि आम किसानों की औसत जोत का आकार और भी कम है। जबकि एक किसान परिवार के पास उत्पादन की दृष्टि से देखें तो अधिकतम पच्चीस एकड़ और केवल गुजर बसर की दृष्टि से देखें तो कम से कम पाँच एकड़ जमीन होनी चाहिए, इस से कम भूमि वाली जोत नितांत अलाभकारी होती है।

2) जिस वक्त देश आजाद हुआ यानी 1947 में देश की कुल आबादी 36 करोड़ 10 लाख थी, जिसमें से 77% यानी 27 करोड़ 80 लाख आबादी खेती पर निर्भरती थी, और वर्तमान में देश की आबादी लगभग 140 करोड़ से अधिक आबादी है, जिसमें से लगभग 60% से अधिक लोग खेती पर निर्भर है यानी 84 करोड से अधिक लोग, अगर कुल आबादी की खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से देखें तो चार गुणा और कृषि क्षेत्र पर आश्रित किसानों की आबादी की दृष्टि से देखें तो,कृषि भूमि के ऊपर तीन गुणा से अधिक आबादी का भार बढ़ा है।

3) वैसे तो हमेशा से ही कृषि पेशे में प्रकृति पर निर्भरता बनी रही है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के चलते अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, ओलावृष्टि, बाढ़, आग, तूफान, सूखा, फसल महामारी आदि के कारण होने वाले जोखिम और हानियां ज्यादा बढ़ गई है, (लेकिन किसान को इससे बचाने या क्षतिपूर्ति करने की कोई निश्चित व्यवस्था फसल बीमा योजना लागू होने के बावजूद भी ठीक ढंग से आज भी नहीं हो पाई है।)

4) यह कहना गलत नहीं होगा कि एक तरफ हरित क्रांति देश की कृषि और खाद्य सुरक्षा को लेकर जहाँ वरदान साबित हुई तो दूसरी ओर लंबे समय से अपनाई जा रही इस कृषि प्रणाली के कारण कृषि के लिए मूलरूपेण आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों भूमि, जल और जैविक संसाधनो पेड़ पौधों एवं पशु पक्षियों, कीट-पतंग, सूक्ष्म जीवों इत्यादि के संरक्षण संवर्धन और दीर्घकालिक टिकाऊ प्रयोग का समेकित कार्यक्रम न होने के कारण इस बहुमूल्य संपदा का भयावह ह्रास हुआ है।

5) मुख्यत: तेजी के साथ घटता जोत का आकार, कृषि पर आधारित आबादी का बढ़ता बोझ, जलवायु परिवर्तन के कारण खेती में बढ़ता जोखिम एवं भारी नुकसान और प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास के चलते कृषि की स्थिरता और ग्रामीण परिवारों की दीर्घकालिक आर्थिक स्थिति के लिए चिंता का विषय है। किसानों के लिए खेती अब बहुत आकर्षक काम नहीं रह गया है। इन सब कतिपय कारणों से किसानों के सामने चुनौतियां बढ़ती जा रही है। लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन सर्वे के ताजा आंकड़ों के मुताबिक पिछले कुछ सालों से कृषि पर निर्भर लोगों की संख्या कम होने की बजाय बढ़ रही है, क्योंकि मैन्युफैक्चरिंग और सर्विस सेक्टर में पर्याप्त रोजगार पैदा नहीं हो पा रहे हैं। अभी भी आधे से अधिक कार्यबल को कृषि में ही काम मिल रहा है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि एक ओर क्रमबद्ध कृषि सुधारों और हरित क्रांति प्रौद्योगिकी वास्तव में खाद्य उत्पादन परिदृश्य में युगांतकारी परिवर्तन लाने के बावजूद, कृषि एवं किसानों के विरुद्ध नीतियों के चलते किसानों की आय में गैर कृषि कार्य करने वालों लोगों की तुलना में अपेक्षाकृत बढ़ोतरी नहीं हो पाई, वरन इन दोनों वर्गों की आय में विषमता की खाई दिनों दिन बढ़ती ही चली गई। हम सीधे तौर पर कह सकते हैं कि देश की कुल अर्थव्यवस्था की प्रगति में जो कुछ समृद्धि हुई है उसका वितरण अर्थव्यवस्था एवं समाज के विभिन्न वर्गों में समान रूप से नहीं हुआ, विशेषकर ग्रामीण समुदाय को उसका समुचित भाग नहीं मिला। दूसरी ओर परिस्थितिजन्य समस्याओं से किसानों को उबारने के लिये भी कोई कारगर व्यवस्था अभी तक नहीं हो पाई है।

अगर हम संक्षेप मे कहें तो राष्ट्र के समक्ष जो नई चुनौतियाँ मुँह बाए खड़ी हैं, उनमें प्रमुख चुनौतियों में गिरती उत्पादकता, पोषकतत्वों विशेषरूप से नाइट्रोजन का अपर्याप्त एवं असंतुलित उपयोग, जल एवं पोषकतत्त्व उपयोग दक्षता का कम होना, प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण, सिंचाई के लिए समुचित जल का अभाव, आदान सामग्रियों की बढ़ती अत्यधिक लागत रोगों एवं नाशी जीवों का बढ़ना, पोषाहार गुणवत्ता तथा खाद्य सुरक्षा की बढ़ती चिंता के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव जैसी चुनौतियाँ सम्मिलित है। यह कहना गलत नहीं होगा कि हरित क्रांति देश की कृषि और खाद्य सुरक्षा को लेकर जहाँ वरदान

साबित हुई तो दूसरी ओर मिट्टी , पानी, जैवविविधता, मानवीय स्वास्थ्य और प्रकृति प्रदत सहअस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित स्वावलंबी कृषि पद्धति को मटिया-मेट करते हुए अभिशाप में तब्दील हो गई है- आज यह सर्वविदित है।

भारत में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संपदा होने के बावजूद कृषि और किसान पिछड़ा क्यों?

भारत दुनिया में प्राकृतिक संपदा की दृष्टि से देखे तो कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में अति संपन्न देश है। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32.87 करोड़ हेक्टेयर यानी विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 2.4 प्रतिशत पर स्थित है। यहाँ कुल विश्व की अट्ठारह फीसद जनसंख्या निवास करती है। कृषि के लिए मिट्टी, जल, जैव संपदा और जलवायु अति महत्त्वपूर्ण होती है। भारत में इसका आकलन करें तो यहाँ की भौतिक संपन्नता का आपको सहज ही अंदाजा हो जाएगा :-

1) औसतन विश्व की पूरी भूमि का मात्र 11% कृषि योग्य है जबकि हमारी 56% भूमि कृषि योग्य है।
2) पूरी दुनिया में 64 तरह की मिट्टियां पाई जाती है इनमें से अधिकांश/कमोबेश भारत में उपलब्ध है, 46 प्रकार की मिट्टियां तो बहुतायत उपलब्ध है।
3) देश में वर्षा, सतही और भूजल की उपलब्धता की दृष्टि से आकलन करें तो काफी संपन्न है, भारत में हर वर्ष लगभग चार हजार अरब घन मीटर चल वर्षा होती है यह दूसरी बात है कि हम उसका मात्र 10 से 15% उपयोग कर पाते हैं, देश के कुल भूभाग 32.87 करोड़ हेक्टेयर में से लगभग 30 करोड़ हेक्टेयर जलभरण क्षेत्र यानी कैचमेंट एरिया है। नदियों की दृष्टि से देखें तो देश में लगभग 445 नदियाँ हैं जिनकी लंबाई लगभग दो लाख किलोमीटर है। एक अनुमान के अनुसार 1947 में देश में वर्षा जल संरक्षण के लिए लगभग 28 लाख झील और पोखर थे, जिनकी संख्या में आज काफी गिरावट आ गई है। तथा भूजल की दृष्टि से भी देश काफी संपन्न रहा है लेकिन ये अलग बात है कि हरित क्रांति के चलते अत्यधिक जल दोहन के कारण आज देश में लगभग 264 जिलों से अधिक डार्क जोन में चले गए हैं आज भूजल स्तर प्रतिवर्ष 0.3 मीटर की दर से घट रहा है।
4) पूरी दुनिया में 15 प्रकार के जलवायु क्षेत्र हैं तथा कृषि जलवायु क्षेत्र के हिसाब से 127 जलवायु क्षेत्र हैं जो सभी के सभी भारत में उपलब्ध है ।
5) ऋतुओं दृष्टि से भी है दुनिया मे उपलब्ध छह ऋतु में से छह की छह ऋतुएँ भारत में उपलब्ध हैं।
6) जैव विविधता की दृष्टि से देखें तो 48 हजार किस्म के पेड़- पौधे इनमें 15 सौ खाद्य पौधे हैं तथा घरेलू एवं वन्य प्राणियों की 811 नस्लें पाई जाती हैं जो कुल विश्व जैव संपदा का 11 एवं 10 प्रतिशत है। देश में फलों की करीब 375 किस्में, सब्जियों की 280 किस्में, करीब 80 तरह के कंदमूल, करीब 60 तरह के खाए जाने वाले फूल, बीज व मेवे हैं।
7) घरेलू व पालतू पशुओं में गायों की 65 नस्लें उपलब्ध हैं तथा अभी 53 नस्लों को मान्यता प्राप्त हैं, बकरी की 42, भेड़ों की 20, भैंसों की 8, घोड़ों और ऊंटो की छह-छह नस्लें हमारे पास हैं। पूरे विश्व में किसी देश के पास इतनी नस्लें नहीं हैं।
8) विश्व के कुल पशुधन 987 मिलियन का 31% भारत में उपलब्ध है।
9) हमारे पास 77 सो किलोमीटर लंबा समुद्री तट और 20 लाख वर्ग किलोमीटर का अपना आर्थिक क्षेत्र विद्यमान है, जो मतस्य उत्पात ही नहीं ब्लिक बहुमूल्य तेल, गैस और खनिज पदार्थ तथा विद्युत उत्पादन की महती संभावनाएं प्रस्तुत करता है।

यहाँ विचारणीय बिंदु यह है कि इन सभी प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद कृषि की अपेक्षित प्रगति क्यों नहीं हुई?

ग्रामीण विकास की धीमी-पिछड़ी गति में विद्यमान संभावनाओं का उपयोग क्यों नहीं हो पा रहा है? कृषकों, ग्रामीण जीवन का स्तर, उनकी राष्ट्र के जीवन में भूमिका क्यों नहीं उभर पा रही है? हालाकि भारतीय कृषि क्षेत्र में संभावनाएँ अद्वितीय है, लेकिन संभावनाओं और उपलब्धियों में इतना अंतर क्यों है?

यहाँ यह ज्वलंत प्रश्न हमारे सम्मुख यथावत खड़े हैं। समस्या के सभी पक्षों और पहलुओं पर विचार करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कृषि क्षेत्र की अवहेलना हुई है और किसानों के साथ अनुचित व्यवहार किया गया है, खेती और ग्रामीण विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया गया,जितना अपेक्षित था।

कृषि की क्षेत्र की उपेक्षा का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि औद्योगीकरण, वित्तीय कराधान, व्यापार, आयात-निर्यात, यातायात, खनिज, मनोरंजन, पर्यटन आदि छोटे-बड़े सभी सेक्टरों पर राष्ट्रीय नीति बनाई गई है परंतु कृषि के लिए एक समग्र, समेकित राष्ट्रीय कृषि नीति तैयार करने का काम, कृषि पर बनी अनेकों समितियों की रिपोर्ट आने के बावजूद आज तक नहीं हुआ है, और जो थोड़ा बहुत (कृषि नीति-2000 एव 2007) हुआ भी है तो उसके अपेक्षित परिणाम सामने दिखाई नहीं दे रहे हैं।

अत: इन प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों के दीर्घकालीन टिकाऊ समुचित उपयोग के कार्यक्रमों के साथ-साथ राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में किसानों की उचित भूमिका और उन्हें आर्थिक प्रगति में नया उचित भाग दिए जाने के लंबे समय से योजना पर काम किया जाना आज भी अपेक्षित है।

भारत में कृषि का इतिहास!

भारतीय कृषि का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि भारत, "रॉयल कमिशन ऑन एग्रीकल्चर 1926 के अनुसार भी भारत में कृषि का ज्ञान-विज्ञान लगभग 10 हजार वर्षों से अधिक पुराना है"।

आदिकालीन तथा मध्यकालीन भारत में खाद्यान्न फसलों के रूप में चावल, गेहूं, मोटे अनाज और दलहनों की खेती के अभिलेखों में यह पाया गया है कि आदिकालीन भारत न केवल खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बना बल्कि

उसने विभिन्न कृषि उत्पादों जैसे कि मसाले, चावल, कपास एवं रेशमी कपड़ों का निर्यात भी किया। विभिन्न इतिहासकारों द्वारा किए गए आकलनों में यह पाया गया है कि यद्यपि भारत घनी आबादी वाला देश था, लेकिन पर्याप्त जल वर्षा, सिंचाई के लिए पर्याप्त साधनों, अनुकूल कृषि जलवायु स्थितियों और मिट्टी की उर्वरता के कारण एक वर्ष में दो बार फसल उगाना संभव हुआ, जिससे उस समय खाद्यान्नों के व्यापक उत्पादन में सहायता मिली। भारत के किसान सदा से ही कुशल, परिश्रमी, स्वतंत्र और स्वाभिमानी रहे हैं। उनकी समृद्धि के कारण ही भारतीय गाँव उद्योग धंधों से संपन्न रहे। भारत की 25% आबादी उद्योग धंधों में लगी थी।

हमारे किसानों की इस समृद्धि को मध्यकाल विशेष रुप से मुगल सम्राट अकबर के पश्चात से ग्रहण लगना शुरू हुआ। उन्होंने भारत की खेती को बर्बाद किया। जिससे खाद्यान्नों की उपलब्धता भी कम हुई। मध्य काल में कम कृषि उत्पादन की समस्या तब और बड़ी हो गई जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। क्योंकि उस दौरान चाय, कॉफी, नील, चरस, पटसन/ जूट, रेशा और गन्ना जैसी वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन पर मुख्य रूप से जोर दिया जाने लगा और खाद्यान्न फसलों के उत्पादन पर कम जोर दिया गया। उदाहरण के लिए सन 1901 से लेकर 1947 तक खाद्यान्न उत्पादन में भारी गिरावट आई, जबकि आबादी में 38% की वृद्धि हुई तथा खेती योग्य क्षेत्रफल में केवल 18% की वृद्धि हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय खाद्यान्न की उपलब्धता की दृष्टि से भारत में कृषि एक कठिन दौर से गुजर रही थी। घरेलू माँग की पूर्ति करने हेतु खाद्यान्नों का आयात करना अनिवार्य हो गया था। खाद्यान्नों का आयात काफी तेजी से बढा, जो सन 1946 में 1.5 मिलियन टन से बढ़कर 1950 में 4.8 मिलियन टन तथा 1966 में 10.4 मिलियन टन के सर्वोच्च स्तर पर था।

गत पचहत्तर वर्षों में भारत एक आयातक देश से निर्यातक देश बनने तथा कृषि क्षेत्र में अभी तक हुए सुधारों को सात काल खंडों में बांटकर, विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

1) **पहला कालखंड**- देश की आजादी के बाद पहला दौर 1947 से 1968 तक का है जिसमें बुवाई क्षेत्र का विस्तार सिंचाई के संसाधनों में वृद्धि और भूमि सुधार कानूनों की मुख्य भूमिका रही है।
2) **दूसरा कालखंड**- वर्ष 1968 से 1980 तक का है जिसमें अधिक उत्पादन देने वाली बौनी किस्मो, उर्वरकों ,कीटनाशकों एवं नवीन तकनीक का प्रयोग हुआ, जिसे हरित क्रांति का प्रादुर्भाव काल कहा जाता है।
3) **तीसरा कालखंड** - वर्ष 1981 से 1991 तक का है, जिस दौरान कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की नीति, सुनिश्चित सरकारी खरीद और भंडारण एवं वितरण की राष्ट्रव्यापी व्यवस्था हुई।
4) **चौथा कालखंड**- वर्ष 1991 से 1998 तक उदारीकरण वैश्वीकरण का वह दौर जिसमें विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई तथा औद्योगिक, सेवा क्षेत्र, बौद्धिक संपदा के नियम कायदों के साथ-साथ दुनिया के कृषि क्षेत्र को विश्व व्यापार में शामिल कर बड़े बदलावों की शुरुआत हुई।
5) **पाँचवा कालखंड**- वर्ष 1999 से 2004 तक का रहा जिसमें परंपरागत जैविक खेती को बढ़ावा देने, ग्रामीण आधारभूत ढांचा निर्माण मसलन सड़क, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा आदि के विकास तथा कृषि क्षेत्र में आई विसंगतियों को दूर करने के लिए नवंबर 2004 में प्रोफेसर एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया गया। आयोग ने अपनी अंतिम रिपोर्ट 4 अक्टूबर 2006 को केंद्र सरकार को सौंप दी।
6) **छठा कालखंड**- वर्ष 2014 से मोदी सरकार द्वारा उत्पादन के साथ-साथ किसानों की आय दोगुनी करने के संकल्प को पूरा करने की दृष्टि से सॉयल हेल्थ कार्ड, बूंद बूंद सिंचाई, नई फसल बीमा योजना सहित अनेकों योजनाओं के साथ-साथ वैल्यू एडिशन और किसानों को सीधे मार्केटिंग से जोड़ने की बाते कही गई थी। हालांकि लागू की गई सभी योजनाओं के निष्प्रभावी क्रियान्वयन के कारण अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आए हैं।
7) **सातवां कालखंड**- वर्ष 2020 कोविड-19 कोरोना महामारी संकट से उपजी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आत्मनिर्भर गाँव का निर्माण करते हुए आत्मनिर्भर भारत बनाने के संकल्प को पूरा करते के लिए कार्य योजना का विस्तार।

स्वतंत्रता के पश्चात, तत्कालीन सरकारों द्वारा हरित क्रांति सहित शुरुआती तीन कालखंडों के प्रभावी कृषि सुधारों के परिणामस्वरूप यहाँ इस बात का उल्लेख करना तर्कसंगत है कि जहाँ सन 1950 - 51 के दौरान भारत ने खाद्यान्न उत्पादन का 50.8 मिलियन टन, सब्जियों और फलों का 25 मिलियन टन, दूध का 17 मिलियन टन, अंडों का 1.8 बिलियन और ताजा मछली का 0.75

हमारे किसानों की इस समृद्धि को मध्यकाल विशेष रुप से मुगल सम्राट अकबर के पश्चात से ग्रहण लगना शुरू हुआ। उन्होंने भारत की खेती को बर्बाद किया। जिससे खाद्यान्नों की उपलब्धता भी कम हुई। मध्य काल में कम कृषि उत्पादन की समस्या तब और बड़ी हो गई जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। क्योंकि उस दौरान चाय, कॉफी, नील, चरस, पटसन/ जूट, रेशा और गन्ना जैसी वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन पर मुख्य रूप से जोर दिया जाने लगा और खाद्यान्न फसलों के उत्पादन पर कम जोर दिया गया। उदाहरण के लिए सन 1901 से लेकर 1947 तक खाद्यान्न उत्पादन में भारी गिरावट आई, जबकि आबादी में 38% की वृद्धि हुई तथा खेती योग्य क्षेत्रफल में केवल 18% की वृद्धि हुई

मिलियन टन का उत्पादन होता था, वहीं वर्ष 2024-25 में खाद्यान्न उत्पादन 357.7 मिलियन टन, सब्जियों और फलों का 369. 0 मिलियन टन, दूध का 247.87 मिलियन टन, 149.11 अरब अंडो का और मछली का 22.00 मिलियन टन का उत्पादन किया। 2024-25 में कुल मीट उत्पादन 10.50 मिलियन टन।

आज भारत दुनिया में कृषि और खाद्य उत्पादों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है और विश्व उत्पादन में 11.6 प्रतिशत योगदान करता है। कभी जिस अमेरिका से लाल गेहूँ आयात करता था आज उसी अमरीका को सबसे से ज्यादा कृषि उत्पादों का निर्यात कर रहा है। हालाकि ये हालात तब हैं जबकि हमारे देश में फसलों की उत्पादकता अनेक देशों की तुलना में बहुत कम है। यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि देश के संपूर्ण कृषि क्षेत्र में से मात्र 40% को सुनिश्चित सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो पाई है। शेष 60% अभी भी वर्षा पर आधारित है तथा दोनों क्षेत्रों की उत्पादकता एवं आय में भारी अंतर है। सिंचित क्षेत्रों में प्रति हेक्टेयर 4 टन और वर्षा आधारित क्षेत्र में केवल 1.2 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादकता है। इसमें अभी और सुधार करने की जरूरत है।

हमें अपने देश के इतिहास , भूगोल और वर्तमान परिस्थितियों का सही-सही आकलन और विश्लेषण करते हुए,इतिहास में हुई भूलों को सुधारते हुए, अपनी सामर्थ्य अनुसार योजना बनाते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता है। हम सब लोग आत्मनिर्भर गाँव से आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए कृत संकल्प है।

भारतीय कृषि का दार्शनिक यानी सैद्धांतिक पक्ष!

1) भारतीय तत्त्वदर्शियों के अनुसार, 'परमपिता परमेश्वर' समस्त जीवों को जीवन प्रदान करते हैं तथा मां स्वरूपा 'प्रकृति' सभी समस्त जीवो के पोषण की व्यवस्था करती है तथा प्रकृति द्वारा पोषण की व्यवस्था को सुचारू और सुव्यवस्थित ढंग से सहयोगी के रूप में काम करने वाले व्यक्ति को 'किसान' कहते हैं। इसीलिए किसान को परमात्मा के दूत के रूप में माना गया है।
2) कृषि, किसान और उसके द्वारा उत्पादित अन्न के महत्त्व को हमारे शास्त्रों में वर्णित अनेकों उल्लेखों से समझा जा सकता है। वेदों और उपनिषदों में कहा गया है कि "अन्नं ब्रह्मा रसं विष्णु: भोक्ता देवो जनार्दन:" यानी अन्न ब्रह्म है, उसमें मौजूद सार तत्त्व विष्णु हैं, उपनिषद में ऋषि कहते हैं कि 'कृषि' जीवन का आधार है, क्योंकि अन्न की प्राप्ति कृषि कार्यों से ही होती है। भूमि, जल, जैव-संपदा एवं जलवायु के सहयोग से विभिन्न जैविक उत्पादों के उत्पादन करने वाले मानवीय उद्यम को ही 'कृषि' कहा जाता है और कृषि से पैदा हुई फसलों का वितरण कैसे किया जाना है, उसके बारे में भी ऋग्वेद में बताया गया है। ऋग्वेद के अनुसार जो अन्न खेतों मे पैदा होता है, उसका बंटवारा देखिए... जमीन से चार अंगुल भूमि का, गेहूं के बाली के नीचे का पशुओं का, पहली फसल की पहली बाली अग्नि की, बाली से गेहूं अलग करने पर मुट्ठी भर दाना पंछियों का, गेहूं का आटा बनाने पर मुट्ठी भर आटा चीटियों का, चुटकी भर गुथा आटा मछलियों का, फिर उस आटे की पहली रोटी गौमाता की, पहली थाली घर के बुजुर्गो की, फिर हमारी थाली और अंतिम रोटी कुत्ते की। ये हमें सिखाती है, हमारी सनातन संस्कृति और.. मुझे गर्व है कि मैं इस संस्कृति का हिस्सा हूँ।
सनातन वैदिक कृषि परंपरा प्रकृति प्रदत्त सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित है। यह भारतीय कृषि पद्धति दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से परिपक्व है तथा पूरी तरह से प्रकृति प्रदत्त सह-अस्तित्व के सिद्धांत के नियमों का सम्मान और पालन करती है। यह समस्त पर्यावरणीय परिस्थितियों को अक्षुण्ण रखते हुए, मिट्टी के अंदर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों, कीट-पतंगों, पशु-पक्षियों सहित सभी जीवों तथा मानव के पोषण की व्यवस्था करती है।
3) भारतीय मनीषियों के अनुसार मानवीय अस्तित्व में केवल मानव का भौतिक यानि स्थूल शरीर नहीं है बल्कि व्यक्तित्व की आध्यात्मिक संरचना तीन स्तर पर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के रूप में निर्धारित होती है। इनके पोषण की व्यवस्था मे भी कृषि द्वारा उत्पादित खाद्यान्नों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अत: प्रकृति प्रदत्त सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित कृषि पद्धति द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के पोषण की पूर्ति करने की क्षमता है।
4) अगर विस्तार से देखें तो एक ओर इस प्रकृति प्रदत्त सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर आधारित कृषि उत्पादन, मानव के 'स्थूल शरीर' को शक्ति प्रदान करते हुए क्रियाशीलता बढ़ाता है, वहीं 'सूक्ष्म शरीर' की चिंतनशीलता की शक्ति को भी विस्तार देता है तथा 'कारण शरीर' यानी अंत:करण की चेतना को प्रबल करता है एवं अंत: करण मैं व्याप्त भाव चेतना को घनीभूत करता है।तो दूसरी ओर हमारी सामाजिक, आर्थिक खुशहाली एवं समृद्धि सुनिश्चित करने वाला है।
वर्तमान का आधुनिक कृषि विज्ञान केवल व्यक्ति के भौतिक यानि स्थूल शरीर को ध्यान में रखते हुए, उसी के पोषण की दृष्टि से खाद्य उत्पादन करता है, हालांकि वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति से उत्पादित खाद्यान्न आज भौतिक शरीर के पोषण की जगह कुपोषण प्रदान कर रहा है।
पश्चिमी दृष्टि से उपजा कृषि विज्ञान :- विज्ञान किसी भी कालखंड का हो,वह विज्ञान ही होता है। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि हमारे वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण क्या है। अगर दार्शनिक यानी सैद्धांतिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से आपसी सामंजस्य और समन्वय हो तो वह विज्ञान समस्त मानव जाति और सृष्टि के लिए वरदान साबित होता है। लगभग सभी क्षेत्रों में विज्ञान की खोजों ने मानव जीवन की दुर्गम राह को सुगम बनाने का कार्य किया है लेकिन आज उसकी कुछ खोजों के परिणाम स्वरूप प्रदूषण,जलवायु परिवर्तन

और विनाशकारी हथियारों के रूप में अभिशाप बन चुका है इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता है।

5) आज विचारणीय बिंदु यह है कि हम प्रकृति प्रदत्त सह-अस्तित्व के सिद्धांत को दरकिनार करते हुए एक तरफ हम अधिक उत्पादन के फेर में जिस आधुनिक कृषि-विज्ञान को अपनाकर हम कृषि के लिए जरूरी संसाधनों भूमि, जल, जैव-विविधता और पर्यावरण को भी प्रदूषित और विकृत कर रहा है, वहीं दूसरी ओर रसायन युक्त खाद्यान्न मानवीय शरीर में गंभीर बीमारियां पैदा कर रहे है। क्या यह 'कृषि विज्ञान' वास्तविक विज्ञान है या विज्ञान के नाम पर मानव अथवा सृष्टि के विनाश का सामान है?

6) यहाँ अपने देश के लोगों को इस तथ्य से अवगत कराना भी जरूरी है कि भुखमरी से जूझ रहे देश के वैज्ञानिकों ने इस खाद्य संकट से निपटने के लिए तात्कालिक उपाय के तौर जिस कृषि विज्ञान और तकनीक का सहारा लिया और जिसे हरित क्रांति की संज्ञा दी गई, वह केवल उस आपात स्थिति उबरने भर तक ठीक था, लेकिन उसे दीर्घकालीन टिकाऊ खेती के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। वर्ष- 1967 में हरित क्रांति के जनक श्री स्वामीनाथन जी ने बनारस विश्वविद्यालय में अपने एक व्याख्यान में इस तथ्य से अवगत कराया था कि हम जिस कृषि विज्ञान और तकनीकी का सहारा लेकर आज उत्पादन बढ़ा रहे हैं, यह तत्कालिक समाधान है, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम उचित नहीं होंगे। इसके लिए हमें टिकाऊ कृषि पद्धति विकसित करनी पड़ेगी, और उन्होंने अपने अंतिम समय में देश की खेती को हरित क्रांति से निकाल कर 'सदा बहार हरित क्रांति' की ओर ले जाने का प्रयास किया।

7) देश की कृषि एवं किसान की दशा सुधारने के लिये कृषि नीति बनाते समय सत्ता में बैठे हमारे राजनैतिक कर्णधारों और नीति निर्माताओं को कृषि ,किसान और उसके द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों के प्रति भारतीय दृष्टि और उसके दार्शनिक यानी सैद्धांतिक पक्ष को समझने की आवश्यकता है।

भारतीय कृषि प्रबंधन का स्वरूप!

भारतीयों के लिए कृषि परंपरागत रूप से केवल व्यवसाय या आजीविका का साधन नहीं रही, बल्कि यह उनके लिए एक जीवन पद्धति यानी जीवन जीने का तरीका रही है। भारत की संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति, सभ्यता यानी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रगति और संस्कृति यानी कलात्मक, भावनात्मक और आध्यात्मिक उन्नति का विकास कृषि के इर्द गिर्द हुआ है। हमारी अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान रही है और आज भी है। इस जीवन पद्धति की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि सदा से ही यह प्राकृतिक संसाधनों के समुचित और टिकाऊ उपयोग के ऊपर आधारित रही है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा एवं संवर्धन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। मुद्रा आधारित विनिमय एवं अर्थव्यवस्था से पहले सारा वस्तुपरक विनिमय कृषि उत्पादन और खनिज पदार्थों के माध्यम से चलता था। केवल गाँव ही नहीं, प्राचीन नगरों की सारी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था कृषि उत्पादन एवं ग्रामीण दस्तकारों की रचनात्मक प्रवृत्तियों के ऊपर ही टिकी हुई थी। व्यापार एवं उद्योग भी इन्हीं व्यवस्थाओं के आधार पर विकसित हुए थे। इन सारी व्यवस्थाओं की सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह थी कि यह उपभोक्तावाद नहीं, बल्कि उपभोग की वस्तुओं के सीमित एवं नियमित उपयोग एवं आत्मसंतोष के ऊपर आधारित थी। इसके फलस्वरुप इस व्यवस्था में आज की तरह आपा- धापी, बेचैनी और मूल्यों के उतार-चढ़ाव से जनित अस्थिरता का कोई स्थान नहीं था। इसीलिए समाज के सभी समुदायों में आत्मनिर्भरता, आत्मसंतोष और स्वाभिमान सदियों तक अक्षुण्ण रहे तथा इसी प्रकार विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का मानव द्वारा भोग, उपभोक्तावाद से प्रेरित नहीं होने के कारण प्रकृति और पर्यावरण भी अक्षुण्ण रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि प्रणाली में हुए बड़े बदलावों के अलावा जैसे-जैसे वस्तुपरक विनिमय आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर मुद्रा आधारित विनिमय एवं अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव होता गया, वैसे-वैसे हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों, व्यवसायों और वर्गों में अत्यंत स्वस्थ एवं सहज मानवीय संवेदना पर आधारित संबंधों में क्षय होता चला गया। दूसरी ओर इस व्यवस्था में किसान, भूमिहीन किसान, दस्तकार और अन्य कमजोर वर्गों की दशा और भी दयनीय होती चली गई। खासकर खेती की अनिश्चितता, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, कृषि आदानों की बढ़ती कीमतों और पूजीं के आभाव एवं सापेक्ष मूल्य नीति के कारण इनकी दशा समाज के अन्य वर्गों की तुलना में पिछड़ती चली गई ।खेती का व्यवसाय आज भी प्रबंधन की दृष्टि से अधि कांश क्षेत्रों में अति पिछड़ा और अकुशल है तथा पूंजी की दृष्टि से अभावग्रस्त है,

भारतीयों के लिए कृषि परंपरागत रूप से केवल व्यवसाय या आजीविका का साधन नहीं रही, बल्कि यह उनके लिए एक जीवन पद्धति यानी जीवन जीने का तरीका रही है। भारत की संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति, सभ्यता यानी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रगति और संस्कृति यानी कलात्मक, भावनात्मक और आध्यात्मिक उन्नति का विकास कृषि के इर्द गिर्द हुआ है। हमारी अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान रही है और आज भी है। इस जीवन पद्धति की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि सदा से ही यह प्राकृतिक संसाधनों के समुचित और टिकाऊ उपयोग के ऊपर आधारित रही है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा एवं संवर्धन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है

साथ ही राजनैतिक उपेक्षा और इच्छा शक्ति के अभाव के चलते कृषि एक अलाभकारी व्यवसाय के रूप में परिवर्तित हो गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि विकास के सारे प्रयास कृषि का उत्पादन बढ़ाने और खाद्यान्न एवं नगदी फसलों की सस्ते दरों पर उपलब्धता के उद्देश्य प्रेरित रहे हैं, लेकिन अधिक उत्पादन के बाद भी किसान सामाजिक और आर्थिक रूप से कैसे और क्यों पिछड़ता चला गया इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया,अब केवल संसद में यह कहने से बात नहीं बनेगी कि ष्देश की कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का इंजन हैष, अब इस इंजन के ओवर हाल कर,तेल पानी डालने और इसके लिए प्रबंधन की सारी विधि को चुस्त-दुरुस्त बनाए जाने की आवश्यकता है। पूरे देश की विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्र की अलग-अलग योजनाएं बनाकर राज्यों के के साथ समन्वय बनाते हुए कृषि उत्पादन और उसका प्रबंधन , किसानों को मिलने वाले लाभकारी मूल्य, कृषि उत्पादों की उपलब्धता उनके पौष्टिक एवं रासायनिक गुणों तथा आधुनिकतम प्रौद्योगिकी सूचना एकत्र करना तथा टिकाऊ कृषि के लिए समन्वित कृषि प्रणाली के ऊपर वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देना, प्रबंधन, प्रशिक्षण एवं जन-चेतना के लिए आधुनिकतम सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग किए जाने के नितांत आवश्यकता है।

कृषि से संबंधित सभी नीतियों का क्रियान्वयन करने के लिए केंद्र और राज्य सरकार विभिन्न विभागों तथा संस्थाओं संगठनों के बीच जीवंत समन्वय और सहकार की रणनीति बनाए जाने की आवश्यकता है।

आत्मनिर्भर गाँव की संकल्पना!

भारत गांवों में बसने वाला देश है और गाँव को बिना संपूर्ण आत्मनिर्भर बनाएं 'आत्मनिर्भर भारत' की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए सरकार को 'आत्मनिर्भर गाँव से आत्मनिर्भर भारत' बनाने की ओर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। नीति निर्माताओं को नीति निर्माण करते समय हमेशा कोविड महामारी के समय संकट से उपजी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कृषि व्यवस्था में सुधार करने की आवश्यकता है, सर्वप्रथम हमें गाँव को आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से 'गांवों की बाजारों पर निर्भरता' को कम करने के लिए रोड मैप तैयार करने की आवश्यकता है। गाँव की खाद्य सुरक्षा को सुरक्षित रखने के लिए हमें 'समन्वित कृषि प्रणाली' के अनुसार कृषि व्यवस्था को दुरुस्त करना पड़ेगा ताकि गाँव में रहने वाली समस्त आबादी के लिए भोजन एवं पशुओं आदि के लिए पर्याप्त पशुआहार, चारे इत्यादि व पक्षियों के लिए दाने की व्यवस्था की जा सकें। इस कृषि प्रणाली द्वारा गाँव में रहने वाली समस्त आबादी के लिए उपभोग में लाए जाने वाले समस्त अनाज, दलहन, तिलहन, फल-सब्जी आदि के साथ के कपास, सन (जूट) व गुड, शक्कर, खांड, राब, सिरका आदि खांडसारी के लिए गन्ने की पैदावार करनी पड़ेगी, इस सबके अतिरिक्त दूध,दही, मक्खन, छाज और घी आदि के लिए पशुपालन की व्यवस्था करनी होगी। खेती के अतिरिक्त पशुपालन के द्वारा किसानों एवं भूमिहीनों की बड़ी आबादी अतिरिक्त आमदनी प्राप्त करती है इसलिए अपने इस फसल चक्र में तथा चरागाहों को सुरक्षित रखते हुए पशुओं के लिए चारे की पर्याप्त मात्रा में व्यवस्था बनानी पड़ेगी, इस फसल चक्र द्वारा लोगों की खाद्य पदार्थों के लिए बाजारों पर निर्भरता कम होगी और गाँव आत्मनिर्भर स्वावलंबी बनेंगे । गाँव में लगभग 60% आबादी ऐसी है जो खेतों पर निर्भर है इसके अलावा लगभग 40% आबादी ऐसी है जो भूमिहीन है और वह अपनी जीविका के लिए छोटे-छोटे लघु उद्योगों पर आश्रित है तथा वैकल्पिक रूप में खेती के काम में सहयोग करते हैं। भारत कृषि की दृष्टि से विभिन्न कृषि जलवायु वाला क्षेत्र है , इसलिए पूरे देश की 127 कृषि जलवायु क्षेत्रों के अनुसार समन्वित कृषि प्रणाली यानी इंटीग्रेटेड फार्मिंग सिस्टम के अलग अलग प्रारूप हो सकते हैं। मैं स्वयं ही सत्तर के दशक में इस तरह की कृषि पद्धति का प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं । साथ ही गाँव में हुए अतिरिक्त उत्पादन को बाजार उपलब्ध कराने की दृष्टि से न्याय पंचायत स्तर पर गाँव बाजार हॉट विकसित करने की आवश्यकता है।

गाँव में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हाथों को काम मिले, ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करनी पड़ेगी, उसके लिए कृषि के साथ-साथ खाद्य प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं अपने उत्पादों की सीधे ग्राहकों तक पहुंच बनाने के लिए सुव्यवस्थित मार्केटिंग का नेटवर्क तैयार करना पड़ेगा ,प्रधानमंत्री भी 'फार्म टू फोर्क' की चर्चा कर चुके हैं। इस व्यवस्था निर्माण से खेतों में पैदा हुए उत्पादन का लाभकारी मूल्य किसानों को प्राप्त होगा तथा मूल्य संवर्धन के लिए लगी छोटी-छोटी इकाइयों द्वारा एवं मार्केटिंग द्वारा गाँव में रहने वाली अतिरिक्त आबादी को भी सम्मानजनक रोजगार मिल सकेगा।

साथ ही बेहतर जीवन जीने की अभिलाषा में गाँव से शहर गए लोगों की संभावित आपातकालीन या अनपेक्षित घटना से उपजी परिस्थितियों में वापसी पर उनके लिए भोजन-पानी, आवास के अतिरिक्त रोजगार की व्यवस्था बनाने के लिए भी तैयार रहना होगा।

पिछले वर्षों के दौरान बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए जैसा कि माननीय प्रधानमंत्री ने अपने संबोधन में भी कहा था कि हमें गाँव , जिला, राज्य और देश को आत्मनिर्भर बनाने की ओर बढ़ना है। इसलिए हमें आत्मनिर्भरता की योजना बनाते समय तीन बातों को ध्यान रखना आवश्यक है एक उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी का घनत्व और दूसरे उस क्षेत्र में होने वाला कृषि उत्पादन और तीसरे जल संरक्षण की संरचना, जिसे ध्यान में रखते हुए योजना को मूर्त रूप देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता भोजन और पानी है, इसलिए खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करते हुए कम से कम एक वर्ष की अवधि के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री का संग्रह रखना चाहिए तथा वर्षा के समय जल संरक्षण यानी जितना जल धरती के पेट से निकाल कर उपयोग करें उतना वर्षा के समय धरती के पेट में डालें, गाँव का भोजन-पानी गाँव में, ब्लॉक का भोजन-पानी ब्लॉक में तथा जिले का भोजन-पानी जिले में सुलभ रहना चाहिए।

आज हमारा देश खाद्य संपन्न है तो सिर्फ किसानों के कारण संपन्न है। हमें

भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अपनी खाद्य सुरक्षा व्यवस्था का विश्लेषण कर, उसके अंदर उजागर हुई खामियों को दूर करने का सही समय है। आज सरकार और प्रशासन को जिलेवार अपनी खाद्य सुरक्षा और सुदृढ़ करने के लिए किसानों के खेतों से ही खरीदारी की व्यवस्था जाए और पर्याप्त संख्या में वेयर हाउस एवं कोल्ड स्टोर तथा जिले में कृषि उत्पादन की दृष्टि से के अनुसार खाद्य प्रसंस्करण और पैकेजिंग की इकाइयां स्थापित की जाए। इससे किसानों को उनके उत्पादों के सही दाम मिल सकेंगे एवं रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा होंगे और प्रत्येक वर्ष हजारों टन अनाज की इधर से उधर अनावश्यक ढुलाई व आवाजाही एवं बर्बादी पर रोक लग सकेगी। हमें जनपद के अंदर और जनपद के बाहर बड़े-बड़े महानगरों तक सप्लाई चैन की खामियों को दूर करने, खासकर आपात परिस्थितियों को ध्यान मे रखकर दुरुस्त करने की आवश्यकता है।

यह अनुमान लगाया गया है कि भारत 2050 तक लगभग 170 करोड़ आबादी के साथ विश्व में सबसे अधिक आबादी वाला देश बन जाएगा। तब हमें 457 मिलियन टन खाद्यान्नों (दलहन 50 मिलियन टन सहित) का उत्पादन करना होगा, इसी प्रकार से अन्य खाद्य सामग्रियों में जैसे खाद्य तेलों की 45.2 मिलियन टन, सब्जियां 438.6 मिलीयन टन, फल 183. 4 मिलियन टन, दूध 483 मिलियन टन, चीनी 58.2 मिलियन टन, मास 18.1 मिलियन टन, अंडे 202.5 बिलियन और मछली 27.2 मिलियन टन का उत्पादन स्तर से में वृद्धि करनी होगी। इसके लिए भूमि की उत्पादकता में 4 गुना ,जल की उत्पादकता में 3 गुना वृद्धि करने की आवश्यकता होगी ,ऊर्जा उपयोग दक्षता को भी दोगुना करना होगा और श्रम उत्पादकता में 6 गुना वृद्धि करनी होगी। इस बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति करने हेतु देश को उत्पादकता में चौतरफा विकास वाली टिकाऊ नीति अपनानी होगी , क्योंकि खेती योग्य क्षेत्रफल का के विस्तार की संभावना लगभग नहीं के बराबर है। इसके अलावा, लगातार खेती किए जाने से मिट्टी के अंदर पोषक तत्व भी कम होते जा रहे हैं इसलिए मिट्टी के मूल प्रमुख एवं लघु पादप पोषक तत्वों की पुनः पूर्ति की करने की आवश्यकता है। देश अदृश्य भुखमरी और कुपोषण से निबटने के लिए जरूरी पोषक तत्व आपूर्ति के मामलों पर कोई समझौता नहीं कर सकता है ।आज की स्थिति के अनुसार मृदा के स्वास्थ्य उत्पादकता या किसानों की आय को ध्यान में रखते हुए रासायनिक उर्वरकों के अलावा पर्याप्त जैविक खाद , हरी खाद के उपयोग की आवश्यकता है। हमें बड़े- बड़े खेतों के नहीं, अपितु छोटी जोत वाले किसानों को ध्यान में रखते हुए ऐसी कृषि प्रणाली और प्रौद्योगिकियां विकसित करने की जरूरत है जिनसे किसानों की आय बढे और वे पर्यावरण के अनुकूल भी हो।

संदर्भ-

1. भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा अनुमोदित राष्ट्रीय कृषि नीति-2000,
2. राष्ट्रीय किसान आयोग प्रोफेसर एस स्वामीनाथन रिपोर्ट-2006,
3. राष्ट्रीय कृषि नीति-2007,
4. राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी द्वारा रिपोर्ट 2019,
5. भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान (IIFSR) मोदीपुरम में प्रस्तुत रिपोर्टों एवं आलेखों पर आधारित हैं)

फार्म-4

'मंथन' के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे

प्रकाशन स्थान	:	नई दिल्ली
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक	:	ओसियन ट्रेडिंग को.
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शाहदरा, दिल्ली
प्रकाशक एवं स्वामी	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एवं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधाान एवं विकास प्रतिष्ठान
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
संपादक	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

मैं डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक से अधिक जानकारी और मेरे विश्वास में ठीक है।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
प्रकाशक

तिथि: 1 मार्च, 2026

प्रो. पी. कनकसभापति

समकालीन आर्थिक व्यवहार में भारतीयता

हजारों वर्षों से जीवित सभ्यता होने के नाते भारत का अपना आर्थिक दर्शन है। इसकी स्पष्ट झलक हमारी संस्कृति में मिलती है। एक सिंहावलोकन

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है जिसका इतिहास अत्यंत लंबा और गौरवपूर्ण है। यह सहस्राब्दियों से एक जीवित सभ्यता के रूप में अपनी यात्रा जारी रखे हुए है और वैश्विक स्तर पर बड़े बदलावों का साक्षी रहा है। खगोल विज्ञान से लेकर वास्तुकला, चिकित्सा से गणित, साहित्य से लोकतंत्र और शिक्षा से लेकर आध्यात्मिकता तक, इसके योगदान विविध क्षेत्रों में रहे हैं। उनमें से अधिकांश नवोन्मेष का मार्ग प्रशस्त करने वाले थे। अधिकांश उपलब्धियाँ उच्चतम कोटि की थीं जो आज भी उपयोगी बनी हुई हैं। इसके अलावा, भारत आर्थिक रूप से सबसे शक्तिशाली था और प्राचीन काल से कई शताब्दियों तक बहुत समृद्ध रहा।

विशिष्ट वाणिज्यिक शहरों और व्यापार केंद्रों के साथ, हम पाँच हजार साल से भी पहले एक प्रमुख निर्यातक राष्ट्र थे। अग्रवाल के अनुसार: "हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे वाणिज्यिक शहरों की स्थापना ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दी में हुई थी। ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दी में पश्चिमी भारत में व्यापार केंद्र भी उभरे थे, जिसके परिणामस्वरूप व्यापारियों द्वारा भारतीय समाज पर प्रभुत्व कायम हुआ; ये वाणिज्यिक लोग पहली व्यापारिक क्रांति ला रहे थे। इस प्रकार भारत एक महान निर्यातक देश बन गया"[1]।

एंगस मैडिसन के अध्ययन से पता चलता है कि सामान्य युग (Common Era) की शुरुआत के दौरान 32.9 प्रतिशत की आश्चर्यजनक हिस्सेदारी के साथ भारत वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में सबसे अधिक योगदान देने वाला देश था। चीन 26.2 प्रतिशत के योगदान के साथ हमारा निकटतम प्रतिस्पर्धी था[2]। यह केवल यह दर्शाता है कि भारत दो हजार साल से भी पहले दुनिया की सबसे शक्तिशाली अर्थव्यवस्था था। शीर्ष पर भारत के साथ पहली सहस्राब्दी के दौरान यह स्थिति बनी रही। अगली कुछ शताब्दियों में भारत और चीन के बीच स्थितियाँ बदलती रहीं, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक भारत शीर्ष दो अर्थव्यवस्थाओं में से एक बना रहा।

कई शताब्दियों तक लगातार बेहतर प्रदर्शन यह दर्शाता है कि भारत बहुत लंबी अवधि तक एक सतत आर्थिक शक्ति बना रहा। मजबूत बुनियादी सिद्धांतों और सबसे उपयुक्त कार्यशील मॉडलों के बिना ऐसा रिकॉर्ड संभव नहीं होता।

भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित होने के बाद, उन्होंने व्यवस्थित रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था को नष्ट करना शुरू कर दिया। कृषि, विनिर्माण, व्यापार और शिक्षा जैसे प्रत्येक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों पर गंभीर प्रहार किए गए। इसके अलावा धन की भारी निकासी हुई, जिसका अनुमान अब 1765 से 1900 के बीच कुल 135 वर्षों में, लगभग 63 ट्रिलियन डॉलर लगाया गया है[3]। यह अमेरिका की वर्तमान जीडीपी से दोगुने से भी अधिक है। इसके कारण बार-बार अकाल पड़े जिससे करोड़ों नागरिकों की मृत्यु हुई। इसके अतिरिक्त रोजगार का भारी नुकसान हुआ, ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन हुआ, अनुकूल व्यापार संतुलन में बदलाव आया और कई शताब्दियों से विकसित और पोषित आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों का विनाश हुआ।

प्रसिद्ध अमेरिकी बुद्धिजीवी विल ड्यूरेंट ने 1930 में लिखा था: "भारत में ब्रिटिश शासन पूरे दर्ज इतिहास में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का सबसे घिनौना और आपराधिक शोषण है"[4]। परिणामस्वरूप, एक शीर्ष आर्थिक शक्ति के रूप में भारत की लंबे समय से चली आ रही स्थिति

का अंत हो गया। 1950 के दौरान जीडीपी में भारत की हिस्सेदारी मात्र 4.2 प्रतिशत थी। इस प्रकार भारत को एक गरीब, कम साक्षर और अल्पविकसित अर्थव्यवस्था बना दिया गया। इतिहास हमें सिखाता है कि कोई भी राष्ट्र विदेशी विचारों और दृष्टिकोणों के माध्यम से दूसरों का अनुसरण करके प्रगति नहीं कर सकता। एक महान सभ्यता जिसका लंबा इतिहास और असाधारण उपलब्धियायाँ रही हों, उसके लिए यह और भी सच है। इसलिए गांधी जी जैसे नेता स्वतंत्रता के बाद अपनाए जाने वाले दृष्टिकोणों पर व्यापक चर्चा चाहते थे।

लेकिन दुर्भाग्य से 1947 के बाद, जब हमें अपने राष्ट्र के लिए उपयुक्त नीतियां बनाने का अवसर मिला, तो शासक वर्गों ने जमीनी हकीकत और इतिहास की अनदेखी की। उन्होंने राष्ट्र का मार्गदर्शन करने के लिए एक विदेशी दृष्टिकोण चुना और इस तरह समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया। यहाँ तक कि योजना आयोग की स्थापना भी उसी तर्ज पर की गई थी जिसका पालन सोवियत रूस में स्टालिन ने किया था। इसलिए राष्ट्र ने स्वतंत्रता के शुरुआती दशक खो दिए, जो किसी भी विकासशील देश के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसके परिणामस्वरूप, 1980 के दशक तक हमारी विकास दर लगभग 3.5 प्रतिशत के निचले स्तर पर बनी रही।

वही वामपंथी जिन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण की वकालत की थी, उन्होंने इसके परिणामों की आलोचना करते हुए इसे 'हिंदू विकास दर' करार दिया, जैसे कि नीति निर्माताओं की मूर्खता के लिए हिंदू धर्म जिम्मेदार था। इसी अवधि के दौरान यूरोप और अमेरिका में विकास दर के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि हमारे शासकों द्वारा अपनाई गई गलत नीतियों के बावजूद, भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन उन क्षेत्रों के बराबर या उससे बेहतर था। जब 1980 के दशक के उत्तरार्ध में यूएसएसआर में साम्यवाद विफल हो गया, तो भारतीय संस्थापकों ने 1990 के दशक की शुरुआत में वैश्वीकरण पर मुख्य ध्यान केंद्रित करते हुए फिर से एक विदेशी मॉडल चुना - इस बार यह अमेरिका संचालित मॉडल था।

इस प्रकार हमने स्वतंत्रता के बाद दूसरी बार राष्ट्र-केंद्रित नीतियां बनाने का अवसर गँवा दिया। इसके परिणामस्वरूप, बाद के दशकों के दौरान हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्र जैसे कृषि और कुटीर, लघु एवं मध्यम उद्योग (एमएसएमई) गंभीर रूप से प्रभावित हुए। लेकिन दशकों से चली आ रही तमाम अनुपयुक्त दृष्टिकोणों और गंभीर गलतियों के बावजूद, राष्ट्र चुपचाप बढ़ रहा है।

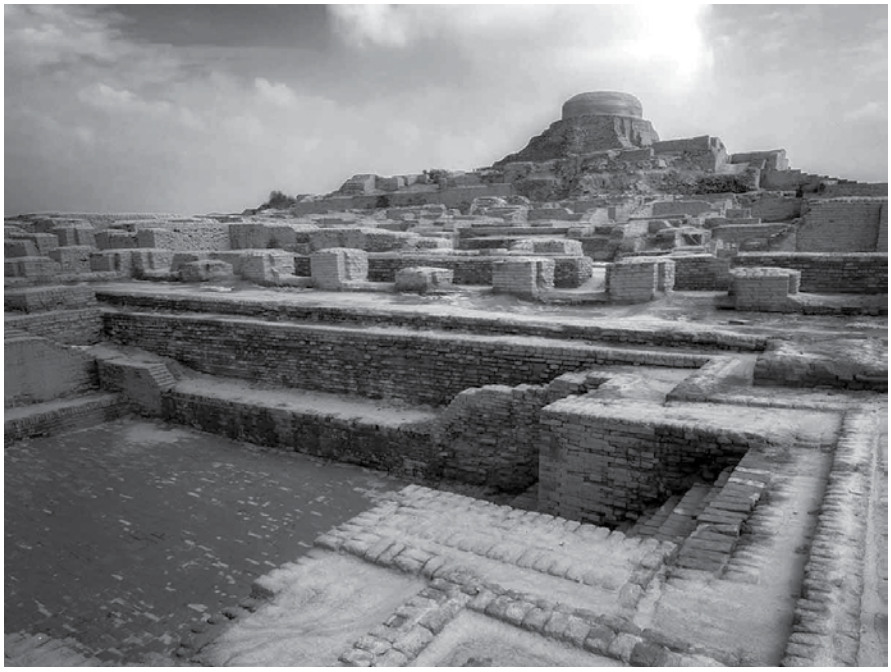

हालाँकि विकास दर बाद में बढ़ने लगी, लेकिन यह हमारी क्षमता से कम थी। हमारे देश के विभिन्न हिस्सों में जमीनी स्तर पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि यह हमारी सभ्यतागत पृष्ठभूमि और समाज की अंतर्निहित शक्तियों के कारण संभव हुआ[5]। प्राचीन काल से कई शताब्दियों के दौरान हमारी संस्कृति द्वारा आकार दी गई मजबूत नींव हमारी मुख्य शक्ति के रूप में बनी हुई है। हमारी पारिवारिक प्रणाली, बचत की आदतें, सामुदायिक नेटवर्क, अगली पीढ़ियों के लिए जीने की प्रवृत्ति और उच्च उद्यमशीलता क्षमताओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था और व्यवसायों को कठिनाइयों के बीच भी प्रगति की ओर आगे बढ़ने में मदद की है और कर रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में सभी विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि काफी हद तक हमारे राष्ट्र की अंतर्निहित शक्तियों के कारण हुई है। औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्र, विशेष रूप से एमएसएमई खंड के क्षेत्र, बिना अधिक औपचारिक शिक्षा और वित्तीय पृष्ठभूमि वाले साधारण परिवारों द्वारा संचालित किए गए हैं। परिणामस्वरूप, वर्तमान में हमारे देश में 6.8 करोड़ से अधिक उद्यम कार्यरत हैं, जो 13 करोड़ से अधिक व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करते हैं। यहाँ सैकड़ों बहुत शक्तिशाली आर्थिक क्लस्टर हैं जिनमें से अधिकांश का टर्नओवर कई हजार करोड़ का है।

उदाहरण के लिए, गुजरात में सूरत भारत का एक प्रमुख व्यावसायिक केंद्र है, जहाँ हीरा प्रसंस्करण और कपड़ा उद्योग इसकी प्रगति को गति दे रहे हैं। यह देश से कुल प्रसंस्कृत हीरा निर्यात में लगभग 80 प्रतिशत का योगदान करता है, जिसका अनुमानित वार्षिक टर्नओवर 2 लाख करोड़ रुपये है। यह भारत में कपड़ों का सबसे बड़ा निर्माता भी है, जो पॉलिएस्टर कपड़े के उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा है। इसका अनुमानित टर्नओवर लगभग 50,000 करोड़ रुपये है। शहर में औसत वार्षिक वेतन लगभग 17.7 लाख रुपये बताया गया है, जो देश में सबसे अधिक है।

तमिलनाडु में तिरुपुर एक प्रमुख कपड़ा निर्यात केंद्र है, जो भारत से होने वाले

सभी बुने हुए कपड़ों के निर्यात का 55 प्रतिशत हिस्से की आपूर्ति करता है। यह विभिन्न देशों को निर्यात कर रहा है और वर्तमान में इसका टर्नओवर लगभग 40,000 करोड़ रुपये है। इसके अलावा इसका घरेलू टर्नओवर लगभग 25,000 करोड़ रुपये है। सूरत और तिरुपुर देश के विभिन्न राज्यों के दो शक्तिशाली एमएसएमई क्लस्टरों में से हैं, जो स्थानीय उद्यमियों की स्वदेशी प्रतिभा के कारण भारत को वैश्विक स्तर पर चमका रहे हैं।

इनमें से अधिकतर आर्थिक क्लस्टर स्वतंत्रता के बाद के दशकों के दौरान स्थानीय समाजों द्वारा अपनी पहल के माध्यम से विकसित किए गए थे। उनमें से अधिकांश को बिना किसी औपचारिक शिक्षा और वित्तीय पृष्ठभूमि वाले लोगों द्वारा बढ़ावा दिया गया था। विश्व स्तर पर प्रसिद्ध इंजीनियरिंग क्लस्टर राजकोट में हमारे अध्ययन से पता चला है कि इसके अधिकांश उद्यमियों ने अपने गांवों में पारिवारिक और सामुदायिक नेटवर्क के माध्यम से अपनी प्रारंभिक पूंजी जुटाई थी[6]। अब इनमें से अधिकांश क्लस्टर अपनी अनुकरणीय उद्यमशीलता की भावना के माध्यम से क्षेत्रीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

पश्चिमी तमिलनाडु में तिरुचेंगोड प्राचीन काल से अपने अर्धनारीश्वर मंदिर के लिए जाना जाता था। 1960 के दशक के दौरान भूजल की कमी के कारण खेती करना भी कठिन था। किसानों को पानी पाने के लिए जमीन में गहरे कुएं खोदने पड़ते थे। इस उद्देश्य के लिए उन्हें रिग की आवश्यकता थी। प्रारंभ में तीन किसान एक साथ मिले, एक मशीन खरीदी और कुएं खोदना शुरू किया। अवसर को भांपते हुए, कई और लोगों ने मशीनें खरीदीं और अन्य राज्यों में परिचालन शुरू किया[7]। जल्द ही, उन्होंने लगभग 90 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ पूरे भारत में व्यवसाय पर अपना दबदबा बनाना शुरू कर दिया। बाद में वे अफ्रीका चले गए और अब वे घाना जैसे देशों के बाजारों पर हावी हैं। वर्तमान में तिरुचेंगोड कई व्यावसायिक गतिविधियों वाला एक प्रमुख क्लस्टर है।

ये सभी केंद्र राज्य और नीति निर्माताओं की अधिक सहायता के बिना, लोगों द्वारा विकसित किए गए हैं। इसके अलावा, राज्य पर उनकी निर्भरता कम है। वास्तव में, इन केंद्रों के सफल उद्यमी स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय बनाते हैं, सुविधाएं प्रदान करते हैं और मंदिरों का जीर्णोद्धार करते हैं, जिससे स्थानीय समुदायों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। यहाँ यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि स्थानीय समाज पृष्ठभूमि और आवश्यकताओं के आधार पर अपने स्वयं के 'स्वदेशी मॉडल' विकसित करते हैं। दक्षिण तमिलनाडु के शिवकाशी और विरुधुनगर भारत के महत्त्वपूर्ण क्लस्टरों में से हैं[8]। पहले शिवकाशी भारत के लगभग 80 प्रतिशत पटाखों, लगभग 50 प्रतिशत माचिस की डिब्बियों और लगभग 30 प्रतिशत परिष्कृत छपाई में योगदान दे रहा था। अब भी यह राष्ट्रीय आय में महत्त्वपूर्ण रूप से उच्च हिस्सेदारी का योगदान देता है, जो लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करता है।

पश्चिमी तमिलनाडु में तिरुचेंगोड प्राचीन काल से अपने अर्धनारीश्वर मंदिर के लिए जाना जाता था। 1960 के दशक के दौरान भूजल की कमी के कारण खेती करना भी कठिन था। किसानों को पानी पाने के लिए जमीन में गहरे कुएं खोदने पड़ते थे। इस उद्देश्य के लिए उन्हें रिग की आवश्यकता थी। प्रारंभ में तीन किसान एक साथ मिले, एक मशीन खरीदी और कुएं खोदना शुरू किया। अवसर को भांपते हुए, कई और लोगों ने मशीनें खरीदीं और अन्य राज्यों में परिचालन शुरू किया। जल्द ही, उन्होंने लगभग 90 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ पूरे भारत में व्यवसाय पर अपना दबदबा बनाना शुरू कर दिया। बाद में वे अफ्रीका चले गए और अब वे घाना जैसे देशों के बाजारों पर हावी हैं। वर्तमान में तिरुचेंगोड कई व्यावसायिक गतिविधियों वाला एक प्रमुख क्लस्टर है

विरुधुनगर एक प्रमुख व्यापार केंद्र है। क्षेत्र पर हावी समुदाय पारंपरिक रूप से भूमि से संबंधित व्यवसाय से है, जिसकी कोई विशेष वित्तीय पृष्ठभूमि नहीं है। जब उन्हें व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए धन की आवश्यकता महसूस हुई, तो उन्होंने 'महमई' नामक अपनी प्रणाली बनाई। उनके परिवारों की आय का एक निश्चित हिस्सा प्रत्येक गाँव/इलाके से एकत्र किया जाता था, और उन लोगों को दिया जाता था जो व्यवसाय में प्रवेश करना चाहते थे। दशकों के दौरान, वे पूरे राज्य में और उसके बाहर, जहाँ तमिल बसे हुए हैं, किराने के व्यवसाय पर हावी होने लगे। इसके अलावा, उन्होंने पटाखों, माचिस की डिब्बियों और व्यापार जैसे व्यवसायों पर भी प्रभुत्व जमाया। यह उनके अपने वित्तीय मॉडल के विकास के कारण संभव हुआ।

प्रत्येक आर्थिक गतिविधि में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि भारत में परिवार केवल सामाजिक और सांस्कृतिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि आर्थिक इकाइयाँ भी हैं। सभी आर्थिक और व्यावसायिक निर्णयों में परिवार के सदस्य शामिल होते हैं। कई उद्यमी आर्थिक और व्यावसायिक गतिविधियों में महिलाओं - माताओं, पत्नियों, दादियों और यहाँ तक कि बहनों - की भूमिका को स्वीकार करते हैं[9]। वे व्यवसायों में अपने बेटों, पतियों, पोतों और भाइयों को बहुत आवश्यक सहायता प्रदान करती हैं। यह वित्तीय, शारीरिक और नैतिक हो सकती है। कई बार उनकी बचत व्यवसायों के लिए बीज पूंजी साबित हुई।

सभी अध्ययनों से पता चलता है कि स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विकास हमारे समाज में निहित हमारी मौलिक शक्तियों से दृढ़ता से प्रभावित था। वे परिवार, सामाजिक पूंजी, सामुदायिक नेटवर्क और स्वदेशी

उद्यमशीलता की भावना के माध्यम से प्रकट होते हैं, जिसमें हमारे राष्ट्र की सदियों पुरानी संस्कृति प्रेरक शक्ति के रूप में है। यहाँ तक कि जब हम पश्चिमी शिक्षित पेशेवरों द्वारा संचालित बड़े कॉरपोरेट्स को देखते हैं, तो हम उनके कामकाज में 'भारतीयता' को समझ सकते हैं। हम इसे बेहतर ढंग से तब महसूस करते हैं, जब हम पश्चिमी और भारतीय कॉरपोरेट्स की कार्यशैली की तुलना करते हैं। इसे कई पश्चिमी विशेषज्ञों ने अपने अध्ययन के माध्यम से स्वीकार किया है।

जॉन केनेथ गालब्रेथ, एक अर्थशास्त्री, 1960 के दशक की शुरुआत में दो साल से अधिक समय तक भारत में अमेरिकी राजदूत थे। उन्हें भारत को करीब से देखने का अवसर मिला। वे 2001 के दौरान भारत आए, जिस दौरान उन्होंने पिछले चार दशकों में हमारे राष्ट्र की प्रगति पर अपनी टिप्पणियाँ साझा कीं। उन्होंने कहा: "हमने पिछले कई वर्षों में भारत की प्रगति देखी है, और इसका श्रेय भारतीय लोगों की ऊर्जा और प्रतिभा तथा भारतीय संस्कृति को जाता है"[10]। क्षेत्रीय अध्ययन हमारे देश में आर्थिक गतिविधि के हर पहलू में 'भारतीयता' के प्रभाव की पुष्टि करते हैं।

2014 की शुरुआत से, हम नीति निर्माण के प्रति दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव देख रहे हैं। जनवरी 2015 में नीति आयोग के साथ दशकों पुराने उधार लिए गए स्टालिनवादी युग के ढांचे को समाप्त करते हुए योजना आयोग को प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसकी स्थापना के लिए पारित कैबिनेट प्रस्ताव में उल्लेख किया गया: "शायद सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संस्थान को इस सिद्धांत का पालन करना चाहिए कि दुनिया के सकारात्मक प्रभावों को शामिल करते हुए, बाहर से कोई भी एकल मॉडल भारतीय परिदृश्य में प्रत्यारोपित नहीं किया जा सकता है। हमें यह खोजने की जरूरत है कि विकास के लिए हमारी रणनीति क्या है। नए संस्थान को इस बात पर ध्यान केंद्रित करना होगा कि भारत में और भारत के लिए क्या काम करेगा। यही विकास का भारतीय दृष्टिकोण होगा"[11]।

पिछले दशक में विकास की प्रक्रिया को 'भारतीय बनाने' की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं। 'अंत्योदय' को मूल उद्देश्य मानकर गरीब और कम सुविधा प्राप्त वर्गों के लिए कई नई योजनाएं लागू की जा रही हैं। 12 करोड़ से अधिक शौचालयों का निर्माण, चार करोड़ घरों का निर्माण, 10 करोड़ से अधिक परिवारों को गैस कनेक्शन प्रदान करना, 41 करोड़ नागरिकों को आयुष्मान कार्ड देना और साधारण पृष्ठभूमि वाले 57 करोड़ लोगों को बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करना हाल के विकास हैं। इन सबने निचले स्तर के लोगों के जीवन में व्यापक सुधार किया है, जिसके परिणामस्वरूप 25 करोड़ से अधिक लोग गरीबी से बाहर आए हैं

पिछले दशक में विकास की प्रक्रिया को 'भारतीय बनाने' की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं। 'अंत्योदय' को मूल उद्देश्य मानकर गरीब और कम सुविधा प्राप्त वर्गों के लिए कई नई योजनाएं लागू की जा रही हैं। 12 करोड़ से अधिक शौचालयों का निर्माण, चार करोड़ घरों का निर्माण, 10 करोड़ से अधिक परिवारों को गैस कनेक्शन प्रदान करना, 41 करोड़ नागरिकों को आयुष्मान कार्ड देना और साधारण पृष्ठभूमि वाले 57 करोड़ लोगों को बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करना हाल के विकास हैं। इन सबने निचले स्तर के लोगों के जीवन में व्यापक सुधार किया है, जिसके परिणामस्वरूप 25 करोड़ से अधिक लोग गरीबी से बाहर आए हैं।

आत्मनिर्भर भारत को मुख्य केंद्र मानकर भारत 2047 तक विकसित भारत की योजना बना रहा है। विकास केवल आंकड़ों में नहीं बल्कि पूरी तरह से समावेशी और समग्र होना चाहिए। एकात्म मानववाद के दर्शन के माध्यम से पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने हमारी सोच और दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन की वकालत की। भारत केवल हमारी सभ्यतागत शक्तियों पर आधारित हमारे स्वदेशी दृष्टिकोणों के माध्यम से ही विश्वगुरु और सबसे शक्तिशाली अर्थव्यवस्था बना रहा। इस महत्वपूर्ण मोड़ पर, जब पश्चिमी प्रणालियाँ पूरी तरह विफल हो गई हैं, हमें यह समझना होगा कि भारत केवल अपनी स्वदेशी शक्तियों के कारण ही एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। हमारे लिए यह समय है कि हम अपनी सभी सोच में 'भारतीयता' को अपनाएं, विभिन्न स्तरों पर हमारे लिए उपयुक्त नीतियां तैयार करें और अपने राष्ट्र को उच्च स्तर पर ले जाने के लिए उन्हें लागू करें।

संदर्भ-

1. अग्रवाल, पी.एन., अ कंप्रेहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिजनेस इन इंडिया - फ्रॉम 300 बी.सी. टु 2000 एडी, टाटा मैक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001, पृ. 265
2. मेडिसन, एंगस, द वर्ल्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री - अ मिलेनियल पर्सपेक्टिव, फर्स्ट इंडियन एडिशन, ओवरसीज प्रेस (इंडिया) प्रा.लि., नई दिल्ली, 2003, पृ.263
3. ऑक्सफैम रिपोर्ट, "टेकर्स ऐंड मेकर्स: द अनजस्ट पॉवर्टी ऐंड अनअर्न्ड वेल्थ ऑफ कोलोनियलिज्म", द इकोनॉमिक टाइम्स, जनवरी 20, 2025 में उद्धृत
4. विल डूरंट, द केस फॉर इंडिया, सिमॉन ऐंड शस्टर, न्यू यॉर्क, 1930, पृ.6-7
5. कनकसभापति, पी., इंडियन मॉडल्स ऑफ इकोनॉमी, बिजनेस ऐंड मैनेजमेंट, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2012
6. वही, पृ.193
7. वही, पृ.225
8. वही, पृ.187
9. वही, पृ.219
10. वही, पृ.72
11. मंत्रिमंडल संकल्प दिनांक जनवरी 1, 2025, भारत सरकार www.niti.gov.in

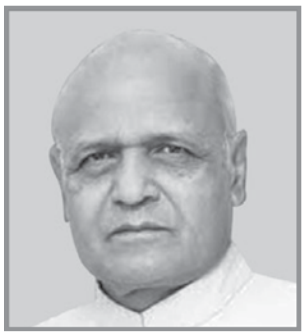

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा

उद्योग जगत की स्थिति और भविष्य

विनिर्माण उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था महत्त्वपूर्ण स्तंभ है, लेकिन विश्व में इसकी हिस्सेदारी केवल 2.9 प्रतिशत है। विकास की भावी रणनीतियों पर विचार

भारत का उद्योग जगत तीव्र आर्थिक विकास और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के दबावों के बावजूद एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। विनिर्माण उद्योग देश की अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ है, जो रोजगार के सृजन, सकल घरेलू उत्पाद के संवर्धन, निर्यात से होने वाली आय और तकनीकी की प्रगति में अहम भूमिका का निर्वहन करता है। एक आकलन के अनुसार वित्त वर्ष 2024-25 के दौरान भारत के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत हो सकती है, जो विश्व के प्रमुख देशों के विकास की दरों में से एक है। वहीं, इसकी वैश्विक वृद्धि दर 2.4 से 4.6 प्रतिशत के बीच कायम है। विनिर्माण उत्पादन और निर्यात में भी निरंतर वृद्धि हुई है; वर्ष 2023-24 में देश का सकल उद्योग उत्पाद 295.36 लाख करोड़ रुपये का था, जो वर्ष 2024-25 में स्थिर मूल्य पर 9.7 प्रतिशत की वृद्धि के साथ बढ़कर 324.11 लाख करोड़ रुपये का हो गया। इनके अतिरिक्त उद्योग के क्षेत्र में रोजगार में भी वृद्धि हुई है, एक आकलन के अनुसार वर्ष 2024-25 में 824.9 मिलियन रोजगार सृजन की संभावना है। इन विकासों के बावजूद, विश्व भर में विनिर्माण के क्षेत्र में भारत महज 2.9 प्रतिशत के अपने मामूली अंश से आगे नहीं बढ़ पाया है, जिसे देखते हुए, तकनीकी के आधुनिकीकरण, नीति में सुधार और वैश्विक मूल्य शृंखला में अधिक से अधिक हिस्सेदारी की जरूरत है। प्रस्तुत निबंध में औद्धयोगिक परिदृश्य की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण, अन्य देशों पर निर्भरताओं का आकलन, और सतत, नव परिवर्तन प्रेरित विकास की भावी रणनीतियों पर विचार किया गया है।

मुख्य शब्द
औद्योगिक विकास, विनिर्माण क्षेत्र, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, आर्थिक वृद्धि, रोजगार सृजन, तकनीकी उन्नति

परिचयः भारतीय अर्थव्यवस्था का संक्षिप्त परिदृश्य

भारत की आर्थिक संरचना में विनिर्माण उद्योगों का - खास कर इंजीनियरिंग और मझोले उपक्रमों का - स्थान अहम है। ये उद्योग राष्ट्रीय आय, विदेशी मुद्र अर्जन, रोजगार सृजन और और जीवन स्तर के समग्र विकास में सहायता करते हैं। प्रस्तुत शोध में भारत के विनिर्माण क्षेत्र, उसकी क्षमताओं और दुर्बलताओं, और भविष्य की औद्योगिक नीति पर पड़ने वाले उसके प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

वर्ष 2024-25 में भारत की कुल आर्थिक वृद्धि दर लगभग 6.4 प्रतिशत रही, जो वैश्विक औसत से अधिक है। तुलना की दृष्टि से देखें, तो चीन की वृद्धि का अनुमानित औसत 4.6, अमेरिका का 1.6 और समस्त विश्व का औसत 2.4 प्रतिशत है। इस सुदृढ़ता से घरेलू मांग और उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन (पीएलआई) योजनाओं व आधारभूत संरचना सुधारों से दमदार नीतिगत समर्थन का पता चलता है।

इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो वर्ष 1951-52 में भारत का सकल घरेलू उत्पाद केवल 4.96 लाख करोड़ रुपये (आधार 2011-12) था। इस प्रकार, 1951-52 से 2024-25 तक के कालखंड में, सैंतीस गुणा से अधिक की वृद्धि हुई है, जो स्वतंत्रता के बाद संरचना में हुए उल्लेखनीय परिवर्तन का द्योतक है।

एक आकलन के अनुसार वर्ष 2024-25 में

चालू मूल्यों पर भारत का सकल घरेलू उत्पाद 324.11 लाख करोड़ रुपये का हो सकता है, जो वर्ष 2023-24 के 295.36 लाख करोड़ रुपये से 9.7 प्रतिशत अधिक है। स्थिर मूल्यों (2011-12) पर, वर्ष 2024-25 का यह मूल्य 184.88 लाख करोड़ रुपये है, जो वर्ष 2023-24 के 173.82 लाख करोड़ रुपये से अधिक है। इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो वर्ष 1951-52 में भारत का सकल घरेलू उत्पाद केवल 4.96 लाख करोड़ रुपये (आधार 2011-12) था। इस प्रकार, 1951-52 से 2024-25 तक के कालखंड में, सैंतीस गुणा से अधिक की वृद्धि हुई है, जो स्वतंत्रता के बाद संरचना में हुए उल्लेखनीय परिवर्तन का द्योतक है।

उद्योग जगत में रोजगार में भी लगातार वृद्धि होती रही है। वर्ष 2024-25 में, सेवा क्षेत्र में 387.5 मिलियन और सामग्री निर्माण उद्योग में 437.4 मिलियन लोगों समेत कुल 824.9 मिलियन लोगों को रोजगार मिला है। वर्ष 2013-14 से 2024-25 के बीच, सेवा क्षेत्र की नौकरियों में 254 प्रतिशत की वृद्धि के साथ कुल रोजगार में 77 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2023-24 के 79.39 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर व्यापारिक निर्यात वर्ष 2024-25 में 94.26 बिलियन अमेरिकी डॉलर का हो गया। यह इस बात का संकेत है कि विश्व बाजार में भारत का औद्योगिक आधार उत्तरोत्तर मजबूत हो रहा है।

इस प्रगति के बावजूद, औद्योगिकीकरण की गति असंतुलित है। आयातित उत्पादक सामग्री पर निर्भरता और उच्च तकनीकी की सीमित क्षमता के कारण मूल्य वर्धन और अलग-अलग क्षेत्रों में आवश्यकता के अनुसार निर्यात नहीं हो पा रहा है। ऐसे में, विश्व के अग्रणी औद्योगिक देशों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु भारत को विनिर्माण, शोध और अभिनव खोज के लिए अपने तंत्र को मजबूत करना चाहिए।

वैश्विक विनिर्माण और तकनीकी प्रतिस्पर्धा के सापेक्ष भारत की स्थिति

वैश्विक विनिर्माण के क्षेत्र में सीमित भागीदारी

पूरी दुनिया की लगभग 17.8 प्रतिशत आबादी भारत में बसती है, इसके बावजूद वैश्विक विनिर्माण उत्पादन में भारत की भागीदारी केवल 2.9 प्रतिशत है। इस असंतुलन से पता चलता है कि भारत में औद्योगिक उत्पादन ज्यादातर मुख्य रूप से असेंब्ली लाइन कंपनी के रूप में काम करने वाले बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेशन करते हैं। वहीं, उच्च प्रौद्योगिकी के सामान और डिजाइन सामग्री का आज भी बड़े पैमाने पर आयात किया जाता है। ऐसे में प्रौद्योगिकी के लिए अन्य देशों पर निर्भरता के कारण भारत के विदेशी मुद्रा का संकट बढ़ जाता है और देश में बौद्धिक संपदा तथा कुशल रोजगार का सृजन आवश्यकता के अनुरूप नहीं हो पाता।

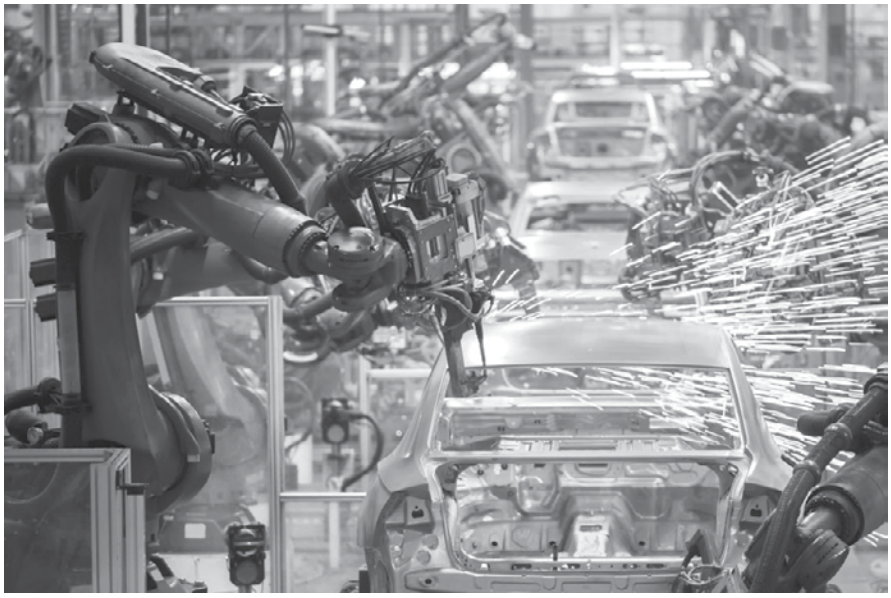

तालिका 1: वैश्विक विनिर्माण में भारत की भागीदारी (2024)

देश	विश्व की जनसंख्या में अंश	वैश्विक विनिर्माण क्षेत्र में भागीदारी
चीन	17.20 प्रतिशत	31.6 प्रतिशत
संयुक्त राज्य	4.22 प्रतिशत	15.9 प्रतिशत
जपान	1.5 प्रतिशत	6.5 प्रतिशत
जर्मनी	1.02 प्रतिशत	4.8 प्रतिशत
भारत	17.78 प्रतिशत	2.9 प्रतिशत

स्रोत : संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (यूएनआईडीओ, 2024); विनिर्माण मूल्य वर्धित डेटासेट, विश्व बैंक

तकनीकी प्रतिस्पर्धा

उच्च तकनीकी उत्पादों के निर्यात में भारत अग्रणी औद्योगिक देशों से बहुत पीछे है। वर्ष 2024 में चीन के 769 बिलियन और जर्मनी के 223 बिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य के मुकाबले भारत ने कुल 35.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य के उच्च तकनीकी उत्पादों का निर्यात किया। इस अंतर से पता चलता है कि भारत उत्पादक सामग्री के साथ-साथ संयंत्र और उपकरण सामग्री के आयात पर निरंतर निर्भर है।

तालिका 2: देश का उच्च तकनीकी उत्पादों का निर्यात (वर्ष 2024, मिलियन अमेरिकी डॉलर)

स्थान	देश	उच्च तकनीकी उत्पादों का निर्यात (मिलियन अमेरिकी डॉलर)
1	चीन	769 699.28
2	जर्मनी	223 370.84
3	हांग कांग	194 079.88
4	संयुक्त राज्य	166 435.57
5	विएतनाम	122 993.36
6	दक्षिण कोरिया	98 537.96
7	फ्रांस	95 753.98
8	सिंगापुर	94 102.98
9	नीदरलैंड्स	92 149.42
10	मेक्सिको	85 898.58
11	भारत	35 219.09

स्रोत : संयुक्त राष्ट्र कॉमट्रेड डेटाबेस (2024); वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन स्टैटिस्टिक्स पोर्टल

इस प्रकार, भारत चीन की तुलना में 4.5 प्रतिशत और जर्मनी की तुलना में 15 प्रतिशत उच्च तकनीकी उत्पाद का निर्यात करता है। ऐसे में, घरेलू उद्योग में शोध, डिजाइन और अभिनव उद्यम में गहरा तालमेल कायम करना बहुत जरूरी है। इस अंतर से आगे बढ़ने के लिए अभिनव उद्यम केंद्रों के निर्माण, विश्वविद्यालयों और उद्योग के बीच गहरे सहयोग, इलेक्ट्रॉनिक सामग्री, सेमीकंडक्टर और अक्षय ऊर्जा उपकरण पर केंद्रित उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजनाओं के विस्तार की जरूरत है।

वैश्विक मूल्य शृंखला (जीवीसी) में भारत की भागीदारी

विश्व उत्पादन तंत्र में सीमित सन्निवेश

वैश्विक मूल्य शृंखला (जीवीसी) आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार का एक मुख्य आधार है, जिसमें आज उत्पादक सामग्री और सहायक सामानों का दुनिया का 70 प्रतिशत से अधिक व्यापार बहुराष्ट्रीय व्यवस्था में होता है। उत्पादन की इन प्रणालियों में देशों में मूल्य वर्धन का वितरण उनकी तकनीकी विशेषज्ञता और लागत लाभ के अनुरूप किया जाता है।

भारत का बाजार बड़ा और जनसंख्या विशाल है, इसके बावजूद वैश्विक मूल्य शृंखला (जीवीसी) में - विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक सामग्री और उच्च तकनीकी के विनिर्माण क्षेत्र में - उसकी भागीदारी बहुत कम है। वैश्विक इलेक्ट्रॉनिक मूल्य शृंखला में देश की भागीदारी महज 1 प्रतिशत है। इसके उलट, चीन 30 प्रतिशत का निर्यात और 17 प्रतिशत का आयात करता है। इस अल्प भागीदारी के कारण भारत अंतरराष्ट्रीय तकनीकी हस्तांतरण और उच्च मूल्य के विनिर्माण के अवसरों का वांछित लाभ नहीं ले पाता।

तालिका 3: वैश्विक इलेक्ट्रॉनिक मूल्य शृंखला में भारत की भागीदारी

देश	निर्यात (बिलियन अमेरिकी डॉलर)	निर्यात (प्रतिशत)	आयात (बिलियन अमेरिकी डॉलर)	निर्यात (प्रतिशत)
चीन	886	30	512	17
संयुक्त राज्य	210	7	482	16
ताईवान	267	9	126	4
दक्षिण कोरिया	189	6	124	4
सिंगापुर	168	6	147.5	5
जर्मनी	157	5	180	6
विएअनाम	130	4	116	4
मलेशिया	105	4	69	2
जापान	87	3	109	4
मेक्सिको	82	3	118	4
नीदरलैंड्स	62	2	75	3
भारत	24	1	78	2

स्रोत : ओईसीडी ट्रेड इन वैल्यू ऐडेड (टीआईवीए) डेटाबेस, 2024

भारत की तकनीकी बाधाएं, आधारभूत संरचनाओं की कमी और एक नियामक परिवेश उत्पादन की इन प्रणालियों में उसकी सीमित भागीदारी का मुख्य कारण हैं, जिनका वैश्विक आपूर्ति शृंखला के मानदंडों से पूरी तरह से तालमेल अभी तक नहीं हो पाया है। इसके विपरीत, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के विएतनाम, मलेशिया और थाईलैंड जैसे देशों ने व्यापार समझौतों और निर्यात उन्मुखी केंद्रों का लाभ लेते हुए अधिक से अधिक भागीदारी का अपना लक्ष्य हासिल कर लिया है।

वैश्विक मूल्य शृंखला में भागीदारी संवर्धन की नीतिगत अनिवार्यताएं

भारत को वैश्विक उत्पादन परिदृश्य में महत्त्वपूर्ण नोड बनाने के लिए, कुछ विशेष नीतिगत दिशानिर्देश जरूरी हैं:

1. प्रौद्योगिकी उन्नयन और कौशल विकास - अनुसंधान पारितोषिक, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शोध एवं विकास सहायता से देश में उच्च मूल्य की सामग्री के उत्पादन को बढ़ावा देना।

2. इंफ्रास्ट्रक्चर का आधुनिकीकरण - बंदरगाहों, परिवहन और आपूर्ति व्यय और डिजिटल कड़ी को सुदृढ़ करना ताकि परिचालन व्यय कम हो।

3. व्यापार सुविधा और मानकों के बीच सामंजस्य - सरकार के प्रमाणन नियमों का अंतरराष्ट्रीय मानदंडों से सामंजस्य ताकि निर्यात में भागीदारी सरल हो।

4. रणनीतिक व्यापार अनुबंध - व्यापार के ऐसे द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों पर बातचीत करना, जो भारत में निर्मित सामानों का निर्यात सुनिश्चित करें।

इन प्रयासों से वैश्विक विनिर्माण मूल्य वर्धन और अंतरराष्ट्रीय उत्पादन प्रणालियों में अधिक से अधिक भागीदारी का भारत का लक्ष्य पूरा हो सकता है।

सेमीकंडक्टर निर्माण क्षमता और भारत की बढ़ती भूमिका

वैश्विक संदर्भ

आज के औद्योगिक परिदृश्य में, सेमीकंडक्टर संचार तंत्र और चिकित्सा उपकरणों से मोटर वाहनों, ऊर्जा तंत्रों और रक्षा आधारभूत संरचना तक लगभग हर उन्नत तकनीकी की धुरी का कार्य करते हैं। ऐसे में, तकनीकी आत्मनिर्भरता और आर्थिक प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए सेमीकंडक्टर निर्माण की क्षमता का विकास बहुत जरूरी हो गया है।

संप्रति, सेमीकंडक्टर का निर्माण ज्यादातर पूर्वी एशिया के देशों में, खास कर ताइवान, दक्षिण कोरिया और चीन में, हो रहा है। ये देश समूचे विश्व के कुल लगभग तीन-चौथाई सेमीकंडक्टर का निर्माण करते हैं। सेमीकंडक्टर उद्योग संघ (एसआईएट्ट 2024) के अनुसार, केवल ताइवान में समस्त विश्व के लगभग 60 प्रतिशत चिप का निर्माण होता है, जो टीएसएसी के जरिये

किया जाता है। वहीं, दक्षिण कोरिया और चीन क्रमशः लगभग 18 और 16 प्रतिशत सेमीकंडक्टर का निर्माण करते हैं।

भारत में चिप डिजाइन और एम्बेडेड सिस्टम का पर्याप्त विकास हुआ है, किंतु यहां निर्माण की आरंभिक सुविधाओं का अभाव रहा है। सेमीकंडक्टर मूल्य शृंखला की तकनीकी से चलने वाली इन सुविधाओं के लिए भारी पूंजी की आवश्यकता होती है। फिर भी, इस बाधा को दूर करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक सामग्री निर्माण हेतु भारत सेमीकंडक्टर मिशन और उत्पादन से जुड़ी योजनाओं (पीएलआई) के तहत नीतिगत प्रयास शुरू किये गए हैं।

भारत में बढ़ती संभावनाएं

वर्ष 2025 में, भारत विश्व की अग्रणी कंपनियों के साझा उद्यमों के अंतर्गत बड़े पैमाने पर अपना पहला सेमीकंडक्टर वेफर निर्माण कार्य शुरू कर सकता है। गुजरात (धोलेरा) और असम में इन प्रॉजेक्टों के क्रियान्वयन से भारत की उच्च तकनीकी विनिर्माण क्षमता में बड़ी सीमा तक सुधार हो सकता है। इन कार्यों का लक्ष्य केवल पूर्वी एशिया में निर्यात पर निर्भरता कम करना नहीं, बल्कि वैश्विक आपूर्ति शृंखला को चहुमुखी बनाने के मद्देनजर भारत को एक क्षमतावान वैकल्पिक निर्माण केंद्र के रूप में खड़ा करना भी है।

"मेक इन इंडिया - चिप मैन्युफैक्चरिंग इकोसिस्टम'' और डिजिटल इंडिया प्रोग्राम के साथ-साथ अनुमोदित परियोजनाओं पर सरकार की 50 प्रतिशत पूंजी की सहायता से, डिजाइन, परीक्षण और पैकेजिंग क्षेत्र में बड़े स्तर पर विदेशी पूंजी निवेश और उच्च कौशल रोजगार का सृजन हो सकता है। वहीं, उद्योग एवं तकनीकी संस्थाओं के बीच शोध भागीदारी कायम होने के कारण देश में डिजाइन की क्षमता के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ सेमीकंडक्टर इंजीनियरों की एक नई पीढ़ी का उदय हो रहा है।

किंतु, भारत के समक्ष अभी भी कई चुनौतियां खड़ी हैं: आधारभूत संरचना की उच्च लागत, फैब-ग्रेड मानक पर पानी और बिजली की सीमित उपलब्धता, और निरंतर नीति समर्थन का अभाव। सेमीकंडक्टर के लक्ष्यों की स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने हेतु भारत के लिए इन बाधाओं को दूर करना आवश्यक है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पेटेंट और भारत की अभिनव खोजों की क्षमता डिजिटल इनोवेशन का विस्तार

इक्कीसवीं सदी में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) एक अभूतपूर्व बदलाव की तकनीकी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है। इस तकनीकी ने खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य चिकित्सा, कानून, और लोक प्रशासन के क्षेत्रों में सुधार के नानाविध रास्ते खोल दिए हैं। सुधार लाने, पेटेंट प्राप्त करने और एआई आधारित तकनीकियों का व्यवसाय करने की अपनी क्षमता के बल पर विभिन्न देश अपनी वैश्विक प्रतिस्पर्धा और भविष्य में विकास के मार्गों का निधारण करने लगे हैं।

बीते कुछ वर्षों में, एआई के शोध और नए कार्यों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। एआई के पेटेंट के लिए भारी संख्या में भारतीय कंपनियों ने आवेदन किया है, जो एआई रणनीतिक और व्यावसायिक महत्व के प्रति बढ़ती जागरूकता का परिचायक है। किंतु, इस प्रगति के बावजूद, एआई के वैश्विक पेटेंट में भारत की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है, जिससे पता चलता है कि यहां क्षमता के संवर्धन की बहुत संभावना है।

एआई पेटेंट के स्वत्वाधिकार का तुलनात्मक विश्लेषण (2024)

वर्ष 2024 तक, पेटेंट के लिए आवेदन करने वाले शीर्ष के पंद्रह देशों में भारत भी था, किंतु वह चीन और संयुक्त राज्य जैसे शीर्ष देशों से अभी भी बहुत पीछे है। एआई के 12,945 पेटेंटों के साथ चीन इस क्षेत्र में सबसे ऊपर और 8,609 पेटेंट के साथ संयुक्त राज्य दूसरे नंबर पर है। इसके विपरीत, भारत में हर वर्ष महज कुछ सौ पेटेंट के लिए आवेदन किए जाते हैं, जिससे इसकी भागीदारी हाशिए पर है।

तालिका 4: विभिन्न देशों के एआई पेटेंट (2024)

स्थान	देश	कुल एआई पेटेंट (2024)
1	चीन	12,945
2	संयुक्त राज्य	8,609
3	दक्षिण कोरिया	1,537
4	जापान	1,537
5	जर्मनी	784
6	इंगलैंड	369
7	नीदरलैंड्स	249
8	स्वीडन	243
9	फिनलैंड	180
10	ताईवान	156

स्रोत : विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ, 2024); ओईसीडी एआई पॉलिसी ऑब्जर्वेटरी

पेटेंट स्वामित्व की दृष्टि से भारत अभी भी बहुत पीछे है, पर इसके इनोवेशन इकोसिस्टम का विकास बहुत तेज गति से हो रहा है। बेंगलुरु, हैदराबाद और पुणे में शोध केंद्रों की स्थापना और विश्व की प्रौद्योगिकी कंपनियों व भारत की स्टार्ट-अप कंपनियों के बीच साझीदारी के फलस्वरूप नित नई पद्धतियों का विकास हो रहा है। डिजिटल इंडिया और इंडियाएआई जैसे उपक्रमों के अंतर्गत भारतीय भाषाओं का प्राकृतिक भाषा प्रक्रम (नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग) और एआई संचालित प्रणाली (एआई-ड्रिवेन गवर्नेंस) देश के शोध के आधार और नैतिक ढांचे को सुदृढ़ कर रहे हैं।

एक मजबूत एआई इकोसिस्टम की दिशा में अग्रसर

विश्व में एआई से चलने वाले उद्योग में भारत की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए, कुछ रणनीतिक प्रयास जरूरी हैं:

1. इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी सिस्टम (बौद्धिक संपदा तंत्र) को सुदृढ़ करना - पेटेंट अनुमोदन प्रक्रिया को सरल बनाना और शोधकर्ताओं के बीच आईपी के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना।
2. रिसर्च-इंडस्ट्री (अनुसंधान-उद्योग) सहयोग का संवर्धन - फंडिंग और मेंटरशिप फ्रेमवर्क की सहायता से शैक्षिक अनुसंधानों को औद्योगिक उपयोगों से जोड़ना।
3. कंप्यूटिंग संसाधनों में निवेश - एआई सुपरकंप्यूटिंग सुविधाएं और डेटा-शेयरिंग मंच उपलब्ध कराना।
4. एथिकल एआई और कौशल विकास को बढ़ावा देना - प्रशिक्षण के ऐसे परिवेशों का निर्माण करना, जहां सामाजिक दायित्व और डेटा प्राइवेसी (सामग्री स्वामित्व) के नियम तकनीकी प्रगति के अनुकूल हों।

ये नीतियां अपनाकर, भारत स्वयं को एक उपभोक्ता ही नहीं बल्कि एआई प्रौद्योगिकी के निर्माता के रूप में भी स्थापित करने के साथ-साथ समस्त विश्व के विकास के परिदृश्य में अहम भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

विश्व के शीर्षस्थ निर्यातक देशों में भारत का स्थान

भारत का उभरता निर्यात परिदृश्य

प्रगति के मार्ग पर बढ़ता भारत आज विश्व के शीर्षस्थ व्यापारिक देशों में अपना स्थान बना चुका है, वह आज तिजारती वस्तुओं, सेवाओं और डिजिटल उत्पादों के क्षेत्रों में निर्यात कर रहा है। एक आकलन के अनुसार वर्ष 2025 में देश कुल 773 अमेरिकी डॉलर का व्यापारिक निर्यात कर सकता है। निर्यात की इस प्रगति से वह विश्व का दसवां सबसे बड़ा निर्यातक देश बन जाएगा। इस प्रकार, निर्यात की वर्ष 2000 के दशक की आरंभिक स्थिति की तुलना में यह एक उल्लेखनीय प्रगति है, किंतु वैश्विक निर्यात में भारत अभी भी चीन, संयुक्त राज्य और जर्मनी जैसे शक्तिशाली औद्योगिक देशों से पीछे है।

भारत का एक प्रमुख निर्यातक देश के रूप में उभर कर सामने आना वैश्विक अर्थव्यवस्था से उसके बढ़ते संपर्क का द्योतक है। आज वह कपड़े और खेती-बाड़ी की वस्तुओं जैसे पारंपरिक सामानों के अतिरिक्त इंजीनियरिंग उत्पादों, दवाओं और सूचना तकनीकी सेवाओं का निर्यात भी कर रहा है। हाल के वर्षों में, उत्पादन प्रोत्साहन (पीएलआई) योजनाओं और उद्योग में हुए सुधारों के फलस्वरूप इलेक्ट्रॉनिक के सामान, मशीनरी, और रासायनिक पदार्थों के निर्यात में भारी वृद्धि हुई है।

निर्यात प्रतिस्पर्धा और वैश्विक चुनौतियां

इन उपलब्धियों के बावजूद, भारत को निर्यात की गति में तेजी लाने की दिशा में नानारूप चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें निवेश की बढ़ती लागत, आधारभूत संरचना की बाधाएं और उच्च प्रौद्योगिकी की सामग्री के लिए आयात पर निर्भरता मुख्य हैं। वहीं, विनिमय की बदलती दर और विश्व व्यापार में, खास कर महामारी के बाद आपूर्ति शृंखला के पुनर्निर्माण के मामले में, तनाव के चलते निर्यात योजना के मार्ग में अनिश्चितताएं जन्म लेती हैं।

अधिक से अधिक प्रतिस्पर्धी होने के लिए, भारत को निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए :

1. **परिवहन एवं आपूर्ति प्रक्रिया सक्षमता :** बंदरगाह, भंडारण और परिवहन की आधारभूत संरचना दुरुस्त रखना ताकि कार्य पूरा होने में कम से कम समय लगे।
2. **गुणवत्ता और मानदंड :** सुनिश्चित करना कि देश में निर्माण अंतरराष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन की शर्तों के अनुरूप हो।
3. **व्यापार विस्तार :** अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और मध्य एशिया के कम प्रतिस्पर्धा वाले क्षेत्रों में निर्यात का विस्तार करना।
4. **डिजिटल व्यापार सक्षमता :** अनुकूलित प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और डिजिटल बही आधारित व्यापार सुविधा तंत्र का उपयोग करना।

ये रणनीतियां अपना कर, भारत न केवल एक बड़े निर्यातक के रूप में, बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक भरोसेमंद और प्रौद्योगिकी में एक प्रगतिशील व्यापार भागीदार के रूप में भी अपना स्थान सुदृढ़ कर सकता है।

उदारीकरण के बाद की औद्योगिक नीतियां और अन्य देशों पर निर्भरता

आर्थिक सुधारों के बाद विकास

वर्ष 1991 में लागू उदारीकरण नीति के बाद भारत के औद्योगिक क्षेत्र के पाथ में उल्लेखनीय बदलाव आया। इससे पहले, 1948 और 1956 के ऑद्योगिक नीति प्रस्ताव के अंतर्गत, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए लगभग चालीस उद्योग आरक्षित थे, जबकि निजी क्षेत्र लाइसेंसिंग और आयात नियंत्रण के सख्त नियम के अंतर्गत काम करते थे। हालांकि इन नीतियों से उद्योग के एक विविधमुखी आधार का निर्माण करने में सहायता मिली, किंतु इनके चलते प्रतिस्पर्धा और नव निर्माण के मार्ग में बाधा भी आई।

वर्ष 1991 के बाद हुए सुधारों के फलस्वरूप उद्योग के लिए लाइसेंसिंग प्रथा समाप्त हो गई, अधिकांश क्षेत्रों को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की छूट मिल गई, और विपणन प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन दिया गया। ऐसे में राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था से हटकर एक उदार, विश्व के अन्य देशों से जुड़ी औद्योगिक संरचना का निर्माण हुआ। किंतु, उस दौरान जहां विदेशी नियंत्रण और आयात पर निर्भरता में वृद्धि हुई, वहीं महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की, खासकर इलेक्ट्रॉनिक सामग्री, रासायनिक पदार्थों और मोटर-वाहनों के क्षेत्रों की आपूर्ति श्रृंखला में बाधा भी बढ़ी।

आयात पर बढ़ती निर्भरता और बाजार का केंद्रीकरण

उदारीकरण के बाद से, विभिन्न देशों से, खासकर चीन और पूर्व एशिया के देशों से, आयातित वस्तुओं पर भारत की निर्माण मूल्य श्रृंखला की निर्भरता बहुत बढ़ गई है। मूल निबंध की तालिका 6 में उल्लेख है कि कार, टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर और उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक सामग्री जैसे क्षेत्रों के 70 से 75 प्रतिशत बाजार पर विदेशी कंपनियों का

नियंत्रण है। कई मामलों में, देश में उत्पादन का कार्य केवल वस्तुओं की फिटिंग तक सीमित है, जिनमें महत्त्वपूर्ण वस्तुएं और छोटे-छोटे सामान अन्य देशों से आते हैं।

इस निर्भरता के चलते विशेष रूप से चीन के साथ व्यापार असंतुलन बढ़ा है, हालांकि अन्य क्षेत्रों में दूसरे क्षेत्रों में भारत के निर्यात में बहुत वृद्धि हुई है।

पिछले पूरे दशक के दौरान, चीन के साथ भारत का 80 बिलियन अमेरिकी डॉलर का व्यापार घाटा हुआ, जिससे इलेक्ट्रॉनिक, सौर पैनल, दवा (एपीआई), और औद्योगिक मशीनरी जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की वस्तुओं के आयात पर निर्भरता की सीमा का पता चलता है।

आयात की क्षेत्रवार संरचना

इन आंकड़ों से प्रौद्योगिकी की मुख्य वस्तुओं - सेमीकंडक्टर, फोटोवोल्टिक बैटरी और लिथियम-आयन बैटरी - के आयात पर भारत की निर्भता का पता चलता है। इसके चलते अक्षय ऊर्जा, इलेक्ट्रॉनिक सामग्री, और बिजली चालित वाहन जैसे क्षेत्रों को संकट का सामना करना पड़ता है।

7.4 निर्भरता के संरचनात्मक कारण

भारत में आपस में एक दूसरे से जुड़ी ऐसी कई संरचनात्मक समस्याएं हैं, जिनके चलते व्यापार में असंतुलन और आयात पर निर्भरता बनी रहती है :

1. **देश में सीमित अनुसंधान एवं विकास** - अनुप्रयुक्त अनुसंधान में अपर्याप्त वित्तीय निवेश और पेटेंट के आवंटन में शिथिलता के चलते प्रौद्योगिकी में वांछित आत्मनिर्भरता नहीं आ पाई है।
2. **विखंडित आपूर्ति श्रृंखला** - देश में वस्तुओं का वांछित निर्माण नहीं होने के कारण औद्योगिक सामग्री का अभी भी बड़े पैमाने पर आयात किया जाता है।
3. **लागत अक्षमता** - पूंजी की उच्च लागत, परिवहन और आपूर्ति प्रक्रिया (लॉजिस्टिक्स) की बाधाएं, और सीमित लागत क्षमता के चलते मूल्य प्रतिस्पर्धा में कमी आती है।
4. **नीति में शिथिलता** - प्रक्रिया के क्रियान्वयन में जब-तब होने वाले विलंब और नियामक अनिश्चितता के कारण भारी विनिर्माण में दीर्घकालिक निवेश में बाधा आती है।

आत्मनिर्भर भारत के लक्ष्यों की पूर्ति और बाहरी अवरोधों के कारण उत्पन्न संकटों के निवारण के लिए इन बाधाओं को दूर करना आवश्यक है।

औद्योगिक विकास के रणनीतिक उपाय

देश में विनिर्माण तंत्र को सुदृढ़ और आयात पर निर्भरता कम करने के लिए, इस निबंध में एक बहु-आयामी रणनीति का सुझाव प्रस्तुत है :

क. डंपिंग रोकने के उपाय : अनुचित मूल्य, विशेष रूप से सौर, इलेक्ट्रॉनिक और रासायनिक सामग्री के आयात से होने वाले अनुचित मूल्य पर रोक लगाने के लक्ष्य से शुल्क और गुणवत्ता नियंत्रण लागू करना।

ख. बाहरी अधिग्रहण (आउटबाउंड एक्विजिशंस) : चीन के क्रॉस-बॉर्डर मर्जर मॉडल की तर्ज पर भारतीय कंपनियों को बाहरी प्रत्यक्ष निवेश (ओडीआई) के जरिए अन्य देशों में उन्नत तकनीकी कंपनियों को खरीदने के लिए प्रोत्साहन देना।

ग. औद्योगिक संघ : सार्वजनिक-निजी भागीदारी संरचनाओं के अंतर्गत सहकारी अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए अमेरिका और जापान जैसे उद्योग-अनुसंधान संघों की स्थापना करना।

घ. देशी ब्रांडों को प्रोत्साहन : विदेशी असेंब्लिंग कंपनियों पर अत्यधिक निर्भरता की बजाय लक्षित विपणन और प्रोत्साहन नीति के माध्यम से 'मेड-इन-इंडिया' ब्रांडों को बढ़ावा देना।

च. स्थानीय अनुसंधान और नवाचार : विश्वविद्यालय के साथ मिलकर पूर्व प्रतिस्पर्धी अनुसंधान, आदर्श विकास और उत्पादन केंद्रों के लिए यथा आवश्यक धन की व्यवस्था करना।

छ. श्रम उत्पादकता बढ़ाना और प्रौद्योगिकी अपनाना : उत्पादकता बढ़ाने और रोजगार की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए स्वचालन और रोबोटिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करना।

झ. समन्वित विनिर्माण नीति : मंत्रालयों में सामंजस्य सुनिश्चित करने के लिए वित्त, व्यापार और नव परिवर्तन के उपायों में तालमेल कायम कर एक समेकित औद्योगिक नीति का निर्माण करना।

इन सभी प्रयासों से भारत आयातित सामान के बाजार से हटकर उन्नत विनिर्माण और नव उत्पादन का एक केंद्र बन सकता है।

भविष्य की औद्योगिक रणनीति और क्षेत्रीय औद्योगिक विकास

एक समेकित औद्योगिक दृष्टिकोण की दिशा में अग्रसर

उदारीकरण के बाद से भारत के औद्योगिक परिदृश्य का उल्लेखनीय विकास हुआ है, किंतु संरचनात्मक बाधाओं, तकनीकी खामियों और असमान क्षेत्रीय विकास के चलते देश अपनी पूरी क्षमता का लाभ नहीं ले पाया है। ऐसे में, देश की एक विस्तृत औद्योगिक रणनीति में नव उत्पादन, स्थायित्व और संतुलित क्षेत्रीय विकास पर बल दिया जाना चाहिए। इस रणनीति में वित्तीय प्रोत्साहन, व्यापार सुविधा, कौशल सृजन, और ढांचागत विकास का एक ऐसे तंत्र में समावेश किया जाना चाहिए, जिसमें देशी और विदेशी दोनों निवेशकों को बढ़ावा मिले।

भारत के उद्योग में भविष्य में सुधार के लिए नीचे प्रस्तुत नीति निर्देश आवश्यक हैं :

1. **अनुसंधान एवं नवाचार प्रेरित विनिर्माण :** स्थानीय अनुसंधान और विकास तथा बौद्धिक संपदा के सृजन के लिए निरंतर सहायता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
2. **रोजगार केंद्रित औद्योगीकरण :** विनिर्माण के क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाली नौकरियों के अवसर का सृजन स्वचालन और डिजीटलीकरण के साथ-साथ होना चाहिए।
3. **क्षेत्रीय उद्योग समूह :** राज्यों में विशेष औद्योगिक क्षेत्र का विकास होना चाहिए, ताकि महानगरीय क्षेत्रों पर अधिक भार नहीं पड़े।

4. **औद्योगिक-शैक्षिक सहयोग :** अनुप्रयुक्त अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए विश्वविद्यालयों, प्रौद्योगिकी संस्थानों, और उद्योगों के बीच भागीदारी को सुदृढ़ करना।
5. **आधारभूत संरचना का आधुनिकीकरण :** लॉजिस्टिक्स पार्क, औद्योगिक गलियारा और हरित ऊर्जा प्रणालियों के विकास में तेजी लाना।
6. **निवेश संवर्धन :** सतत निवेश के लिए नियामक प्रक्रियाओं को सरल बनाना और कराधान व नीतिगत ढांचे में स्थिरता सुनिश्चित करना।

औद्योगिक गलियारे और क्षेत्रीय विकास

भारत सरकार के उपक्रम, जैसे दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारे (डीएमआईसी), चेन्नई-बेंगलुरु औद्योगिक गलियारे, और अमृतसर-कोलकाता औद्योगिक गलियारे, के फलस्वरूप औद्योगिकीकरण के स्थानिक ढांचे में परिवर्तन हो रहा है। इन परियोजनाओं का सृजन प्रमुख आर्थिक केंद्रों को परिवहन और संचालन, बिजली आपूर्ति व डिजिटल आधारभूत संरचना से जोड़ने के लिए किया गया है।

राष्ट्रीय औद्योगिक गलियारों के निर्माण का उद्देश्य अलग-अलग क्षेत्रों में विकास केंद्रों का निर्माण करना है, ताकि राज्यों के बीच औद्योगिक क्षमता के असंतुलन को दूर किया जा सके। मोटर-वाहन (तमिलनाडु और महाराष्ट्र), औषधि सामग्री (हैदराबाद और गुजरात), कपड़ा (गुजरात और तमिलनाडु), और खाद (पूर्वी भारत) के क्षेत्रों में उद्योग समूहों की स्थापना वैश्विक मूल्य श्रृंखला में समेकित क्षेत्र-केंद्रित केंद्रों के विकास की संभावना का संकेत देती है।

नवाचार, डिजिटलीकरण और स्वच्छ विनिर्माण

भारत में औद्योगिकीकरण का अगला चरण नवाचार पर आधारित, डिजिटलीकरण की दृष्टि से सशक्त और सुदृढ़ होना चाहिए। इंडस्ट्री 4.0 टेक्नोलॉजी - जिसमें एआई, आईओटी, रोबोटिक्स और एडिटिव मैन्युफैक्चरिंग (त्रि-आयामी वस्तु विनिर्माण) - अपना कर उत्पादकता में बड़े स्तर पर सुधार किया जा सकता है। वहीं, इससे पर्यावरण को होने वाली क्षति में भी कमी आ सकती है। वैश्विक जलवायु प्रतिबद्धताओं के अनुरूप नीतियों में चक्रीय अर्थव्यवस्था नीतियों, ऊर्जा सक्षमता और नवीकरणीय ऊर्जा आधारित विनिर्माण प्रणालियों को बढ़ावा देना चाहिए।

प्रभावशील आपूर्ति श्रृंखला, ई-कॉमर्स समेकन और डेटा विश्लेषण प्रक्रिया के जरिए औद्योगिक कार्यों के डिजिटलीकरण से प्रतिस्पर्धात्मकता और पारदर्शिता में सुधार हो सकता है। भारत का औद्योगिक क्षेत्र अनुकूलनीय और प्रगतिशील बना रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत सुधारों के साथ-साथ उभरती प्रौद्योगिकियों में कौशल का विकास आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारत का औद्योगिक क्षेत्र आज एक नए मोड़ पर खड़ा है। पिछले सात दशकों के कालखंड में, यह एक संरक्षित, सरकार संचालित संरचना से हटकर एक विनिर्माण अर्थव्यवस्था में बदल गया है, और विश्व के औद्योगिक परिवेश में प्रवेश कर चुका है। अब चुनौती प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता, सतत उत्पादन और समान क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देकर इस स्थिति को सुदृढ़ करने की है।

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

शक्ति का केंद्रीकरण लोकतंत्र एवं मानव स्वतंत्रता के प्रतिकूल है। राष्ट्रीय एकात्मकता के अधीन राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों का भौगोलिक एवं व्यावसायिक दोनों ही दृष्टियों से विकेंद्रीकरण होना चाहिए। पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की जो ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है, उससे शक्तियों का केंद्रीकरण हुआ है। सीमित समवाय, प्रबंध अधिकरण तथा सूत्रधारी समवाय आदि की कानूनी व्यवस्थाओं ने इसका पोषण किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक दोष केंद्रीकरण की देन हैं। समाजवाद की व्यवस्था ने केंद्रीकरण को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की। उसने व्यक्तियों के हाथ से पूँजी के स्वामित्व को छीनकर राज्यों के हाथों में सौंपने मात्र से संतोष कर लिया। किंतु इससे राजनीतिक और आर्थिक दोनों शक्तियों के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण केंद्रीकरण तथा उसके दोषों में और अधिक वृद्धि हुई है। रोग का इलाज विकेंद्रीकरण से ही संभव है। आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं का इस उद्देश्य से पुनर्निर्धारण करना होगा। विज्ञान की आधुनिकतम खोजें और प्रौद्योगिकी विकेंद्रित उद्योगों के पक्ष में हैं। मानव व्यक्तित्व को बनाए रखने और उसके सर्वतोमुखी विकास की इस व्यवस्था में सर्वाधिक सुविधा है। निजी या सहकारी स्वामित्व में छोटे यंत्रचालित उद्योग, छोटा व्यापार और कृषि हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार हों। बड़े उद्योगों का विचार अपवाद रूप में ही किया जाए।

दीनदयाल उपाध्याय

सिद्धांत और नीति, दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्गमय, खंड-11, पृ.236-37

प्रो. जवाहरलाल

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'अर्थ' पुरुषार्थ

चार पुरुषार्थों में अर्थ का प्रमुख स्थान है। कौटिल्य ने राज्य-व्यवस्था में इसकी भूमिका पर गहन विचार के बाद एक व्यवस्था दी है। एक दृष्टि

वैदिकवाङ्मय से अद्यतन पर्यंत मानव जीवन के चार प्रमुख लक्ष्य माने गए हैं - धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष। भारतीय जीवन पद्धति एवं जीवन दर्शन आरंभ से ही अध्यात्ममूलक रही है। प्राचीन आचार्यों ने जीवन की प्रवृत्ति एवं स्वभाव के अनुगुण ही शास्त्रों में पुरुषार्थ का चिंतन किया है। अर्थ की दृष्टि से पुरुषार्थ जीवन के प्रमुख प्रयोजनों को संकेतित करता है। पुरुष शब्द का अर्थ है मनुष्य और अर्थ शब्द उसके लक्ष्य को बताता है अर्थात् पुरुषार्थ पद का अर्थ है मनुष्य का लक्ष्य या उद्देश्य। इस दृष्टि से शास्त्रों में पुरुषार्थ शब्द की अत्यंत व्यापक व्याख्या मिलती है। जैसे

स धर्मो यो निरुपधः सोऽर्थो यो न विरुध्यते।
स कामः सङ्गहीनो यः स मोक्षो योऽपुनर्भवः[1]।।

धर्म वही है जिसमें कोई छल न हो, अर्थ वही है जिसमें कोई विरोध न हो, काम वही है जिसमें कोई बंधन न हो और मोक्ष वही है जहाँ कभी भी पुनर्जन्म न हो। न्यायबिंदु में आचार्य पुरुषार्थ की व्याख्या करते हुए कहते हैं सम्यक्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थ सिद्धिरिति[2]। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण के अनुसार

यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्धयति।।

मनुष्य का जीवन इन चार पुरुषार्थों से ही चलता है जिस प्रकार रथ एक पहिए से नही चल सकता उसी प्रकार जीवन का आधार ये चार पुरुषार्थ हैं

यथा हि एकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति[3]।।

जिस प्रकार केवल एक पहिए से रथ चल नहीं सकता, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य भी सिद्ध नहीं होता।

पुराणों में भी अत्यंत व्यापक रूप से पुरुषार्थ चतुष्टय की व्याख्या मिलती है।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितः पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति।।

अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या अर्जन, गृहस्थ आश्रम में धनार्जन एवं वानप्रस्थ में पुण्यार्जन जिसने किया, वही चतुर्थ पुरुषार्थ के लिये प्रवृत्त हो सकता है। इन पुरुषार्थ चतुष्टय में द्वितीय 'अर्थ' पुरुषार्थ अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है। अर्थ शब्द ऋ धातु + थन् प्रत्यय से बना है जिसका अर्थ है इच्छा चाहत धन संपदा आदि जो भौतिक सुख समृद्धि का आधार है। सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्य मूलम् अर्थः[4]।

कौटिल्य अर्थशास्त्र का आरंभ चतुर्विध विद्या से करते हैं जिसमें त्रयी वार्ता दंडति और आन्वीक्षिकी हैं। त्रयी अर्थात् वेदत्रयी जिसका विषय वैदिक क्रियाकलाप के साथ अध्यात्म विद्या है। वार्ता और दंडनीति का प्रमुख प्रतिपाद्य वाणिज्य और राज्य-व्यवस्था के साथ मानव के संपूर्ण जीवन जीने की पद्धति चाहे विविध प्रकार का कर्म हो व्यापार हो राजतंत्र हो शासन व्यवस्था हो जीवन से संबंधित सभी व्यापार ही अर्थशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। स्वयं आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र में स्वयं मनुष्याणां वृत्तिरर्थः मनुष्यवतीभूमिरित्यर्थः तस्याः पृथिव्याः लाभपालनोपायाः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति[5]। अर्थात् मनुष्य के जीवनयापन हेतु जो व्यापार या संसाधन है वह अर्थ है। तथा मानवयुक्त भूमि भी अर्थ पदार्थ है, और इस भूमि अर्थात् पृथ्वी के योगक्षेम अर्थात् पृथ्वी की प्राप्ति और उसके संरक्षण के उपाय बताने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र है। कौटिल्य के इस वचन से अर्थशास्त्र का प्रयोजन भी स्पष्ट है। एवं आन्वीक्षिकी विद्या तर्कशास्त्र या न्याय शास्त्र है जिसके द्वारा वस्तु के पद

पदार्थों का उद्देश्य लक्षण और परीक्षा के द्वारा निर्णय किया जाता है।

अर्थशास्त्र में 15 अधिकरण, 150 अध्याय हैं। यह लघुकाय ग्रंथ मानव के सामाजिक आर्थिक राजनैतिक धार्मिक जीवन को प्रभावित करने वाला है। परंतु जब हम अर्थ पुरुषार्थ विषय विषयक सिद्धांतों का अर्थशास्त्र में अध्ययन करते हैं तो देखते हैं चतुर्विध विद्याओं में परिगणित वार्ता और दंडनीति के अंतर्गत संपूर्ण अर्थशास्त्र ग्रंथ के विषय दृष्टिगत होते हैं। कौटिल्य कहते हैं - कृषि पशुपालने वाणिज्या च वार्ता[6]। मानव जीवन का संपूर्ण व्यवहार वार्ता और दंडनीति के आधार पर ही चलता है। तस्यामायत्ता लोकयात्रा[7]।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ में प्रयुक्त अर्थ पद को पुरुषार्थ चतुष्टय की दृष्टि से देखते हैं तो निश्चित रूप से कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इन चारों को स्वीकार किया है, परंतु अर्थ पदार्थ की व्यावहारिक और राज्य-केंद्रित चिंतन की दृष्टि से व्याख्या करते हैं तो कौटिल्य की दृष्टि से अर्थ पुरुषार्थ केवल धन संपदा या सुख के साधन मात्र नहीं है अपितु अर्थ किसी भी राज्यसत्ता के द्वारा संचालित किए जाने वाले राज्य के लिये जो भी आवश्यक तत्त्व हैं वे परिगणि ात किए गए हैं। इसके अंतर्गत अनेक विषय संगृहीत हैं जैसे भूमि, प्रजा, कोष या राजस्व, सेना, प्रशासनिक संगठन इत्यादि इन सबके समूह ही अर्थ के अंतर्गत परिगणित हैं। कौटिल्य का कथन है कि अर्थो राज्यस्य मूलम्[8]। अर्थात् राज्य की समस्त संरचना का आधार अर्थ है। इसका अर्थ यह नही है कि धर्म-पुरुषार्थ को स्वीकार नही करते कौटिल्य धर्म का मूल आधार भी अर्थ को ही माना है। कौटिल्य धर्म को महत्त्व देते हैं, परंतु वे धर्म को अर्थ पर आश्रित मानते हैं धर्मस्य मूलम् अर्थ:[9]। जब राज्य आर्थिक रूप से सुदृढ़ होगा तभी न्याय, सुरक्षा और लोककल्याण के कार्य के साथ जीवन सुखी एवं समृद्ध हो सकेगा। कोई भी राज्य तभी सुखी एवं समृद्ध हो सकता है जब सभी प्रजा जन को समान रूप से न्याय मिले सभी की जीवन यापन के लिये सुरक्षा सुनिश्चित हो, राजा सदैव लोककल्याण के कार्यो में सन्नद्ध रहे। इस प्रकार न्याय सुरक्षा लोककल्याण जैसे कार्यो के लिये अर्थ अपेक्षित होता है। इसीलिये कौटिल्य ने अर्थ को धर्मपालन का आवश्यक आधार माना है। अर्थ काम रूप तृतीय पुरुषार्थ के लिये भी आवश्यक है। क्योंकि भोग व इच्छाओं की सिद्धि अर्थ पर ही निर्भर है। यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स काम:[10]। बिना अर्थ के न तो व्यक्तिगत सुख संभव है और न ही सामाजिक समृद्धि और न ही कामनाओं की पूर्ति हो सकती है। इसीलिए कौटिल्य के अनुसार राज्य प्रणाली में अर्थ पुरुषार्थ को ही परम पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। अर्थ के बिना राज्य व्यवस्था का समुचित संचालन संभव नहीं हो सकता, अर्थशास्त्र की दृष्टि से राज्य-व्यवस्था में अर्थ पुरुषार्थ के योगक्षेम के लिए अनेक अंगों की चर्चा कौटिल्य अर्थशास्त्र में करते हैं।

कर-प्रणाली और राजस्वव्यवस्था

अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में कर प्रणाली और राजस्व व्यवस्था राज्य के अस्तित्व, स्थायित्व तथा लोककल्याण का मूल आधार मानी जाती है। प्राचीन भारतीय अर्थचिंतन से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्र तक, कर और राजस्व को शासन की कार्यक्षमता से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ा गया है। अर्थशास्त्र में कर वह अनिवार्य भुगतान है, जो राज्य अपनी सार्वभौमिक सत्ता के आधार पर प्रजा से वसूल करता है, जिसके बदले कोई प्रत्यक्ष सेवा देना अनिवार्य नहीं होता। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में समाहर्ता दुर्ग राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं वज्रं वणिक्पथं चावेक्षते[11]। राज्य की प्रशासनिक, सैनिक एवं कल्याणकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राजस्व आवश्यक होता है, क्योंकि आर्थिक न्याय के साथ आर्थिक नियन्त्रण भी राज्य-व्यवस्था के पास रहता है। कर से प्राप्त धन द्वारा ही राजा राज्य में निवेश या उत्पादन की दिशा निश्चित कर सकता है। साथ ही लोक कल्याणकारी कार्यो में प्रवृत्ति का आधार भी धन ही होता है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं आधारभूत संरचना का विकास राज्य की संप्रभुता की अभिव्यक्ति आदि अत: राज्यव्यवस्था में कर का प्रावधान अर्थशास्त्र में किया गया है।

करों का वर्गीकरण

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार दो प्रकार के करों की व्यवस्था मिलती है जिसमें पहला प्रत्यक्ष कर - जो कर सीधे करदाता पर लगाए जाते थे दूसरा अप्रत्यक्ष कर - जो वस्तुओं और सेवाओं पर लगाए जाते थे। क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात्[12]।

क. कौटिल्य ने कर व्यवस्था को राज्य की जीवन रेखा माना है। उनके अनुसार "कोषमूलो दण्ड: राजकोष पर ही शासन की शक्ति आधारित है राज्य-व्यवस्था को समुचित संचालन हेतु राजकर महत्त्वपूर्ण था। धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार समाज से स्वीकृत राजकर राजा प्रजा से लेता था। यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकर के सन्दर्भ में कोई निश्चित परिभाषा प्राप्त नहीं होती तथापि व्यापारियों द्वारा राज्य से बाहर या बाहर से राज्य में व्यापार की वस्तुओं को लाने ले जाने के लिए जो शुल्क लगता था वह राज्य कर होता था।

ख. कृषि कर प्रजा अपने कृषि द्वारा आय के छठवां अंश राजकोष में कृषिकर के रूप में देता था। सीताभागो बलि: करो वणिक् नदीपालस्तरोनाव: पट्टनं विवीतं रज्जुश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्[13]। कृषि कर के लिए अर्थशास्त्र में निम्न प्रकार की व्यवस्था प्राप्त होती है - जैसे स्वसेतुभ्य: हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दद्यु:। स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम्। स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम्[14]। अर्थात् स्वनिर्मित जलाशय से हस्त सिंचित उपज का पांचवां अंश, पूर्वनिर्मितत जलाशय से स्वसिंचित करके उत्पन्न अन्न का चतुर्थ एवं नाली निर्माण द्वारा जलाशय से सिंचित कर उत्पन्न फसल का तृतीय अंश राजा को देना चाहिये।

ग. वणिक्कर - स्थलमार्ग और जलमार्ग व्यापार से इन दो मार्गों से प्राप्त धन वणिक पथकर कहा जाता था। गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रज: स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथ:[15]।

घ. खनिजकर - सोनाचांदीहीरामणिमोती मूंगा लोहा लवणभूमिपत्थरऔर खनिज पदार्थ से प्राप्त आय खनिजकर कही जाती है। सुवर्णरजत मणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोह लवणभूमिप्रस्तररसधातव: खनि:[16]।

ङ. वनकर - हरिण आदि पशु लकडी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को वन कहा जाता था। उन पर लगने वाला कर वनकर कहा जाता था।

इसके अतिरिक्त भी करों की व्यवस्था कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित है। कर निर्धारित करते समय यह अवश्य ध्यान दिए जाने की व्यवस्था प्राप्त होती है कि कर न अधिक हो, न कम, कर ऐसा हो जिससे प्रजा पीड़ित न हो, कर संग्रह मधुमक्खी के समान हो,जैसे मधुमक्खी फूलों को नष्ट किए बिना मधु ग्रहण करता है उसी प्रकार राजा को प्रजा से कर लेनी चाहिए।

राजस्व व्यवस्था

राजस्व व्यवस्था से तात्पर्य वह समग्र संसाधन है जिसके द्वारा राजकोश में आय के संसाधनों का निर्धारण किया जाता था। इसके अनेक प्रकारों की चर्चा कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किया है जैसे वर्तमानः पर्युषितो अन्यजातश्चायः। दिवसानुवृत्तो वर्तमानः परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः[17]। अर्थात् प्रतिदिन होने वाला आय वर्तमान आय है पूर्ववर्ष का धन जो पूर्व में संग्रहण न किया गया हो या शत्रु के देश से आया धन पर्युषित संज्ञक आय है। विस्मृत धन का पुनः स्मरण होने से प्राप्त आय अन्य आय है। इसी प्रकार विविध कार्यों में नियुक्त धन का व्यय न हो पाने से बचा हुआ शेषधन भी एक प्रकार का व्यय प्रत्याय संज्ञक आय कहा गया है। इनके अतिरिक्त भी पाँच प्रकार के अन्य आय के साधनों की चर्चा अर्थशास्त्र में की गई है। विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा वृद्धिरित्यायः[18]। अर्थात् विक्रय काल में वस्तुओं की बढ़ी कीमतों से आय, प्रतिषिद्ध वस्तुओं के विक्रय से, न्यूनाधिक माप से बढ़ी आय, विक्रयकाल में परस्पर स्पर्धा के कारण बढ़े मूल्य से वस्तु विक्रय से प्राप्त धन ये आय के संसाधन कहे गए हैं।

इसी प्रकार व्यय को भी चार भागों में विभक्त कर अर्थशास्त्र में व्याख्यायित किया गया है। जैसे नित्य व्यय - जो प्रतिदिन नियम से व्यय होता है वह नित्यव्यय है। दिवसानुवृत्तो नित्यः[19] पाक्षिक मासिक या वार्षिक लाभ के लिए जो व्यय किया जाता है वह व्यय लाभ व्यय है पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः[20]। नित्य व्यय और लाभ व्यय के साथ जो अधिक व्यय होता है वह नित्योत्पादिका और लाभोत्पादिका व्यय है। तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति[21]। इस सभी प्रकार से बचा हुआ धन कोष में जमा कर दिया जाता है। इस प्रकार जो कोषाध्यक्ष है उसे विवेक पूर्वक राजधन के संग्रह और व्यय के संचालन का निर्देश अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है।

राजस्व व्यवस्था से तात्पर्य वह समग्र संसाधन है जिसके द्वारा राजकोश में आय के संसाधनों का निर्धारण किया जाता था। इसके अनेक प्रकारों की चर्चा कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किया है जैसे वर्तमानः पर्युषितो अन्यजातश्चायः। दिवसानुवृत्तो वर्तमानः परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। अर्थात् प्रतिदिन होने वाला आय वर्तमान आय है पूर्ववर्ष का धन जो पूर्व में संग्रहण न किया गया हो या शत्रु के देश से आया धन पर्युषित संज्ञक आय है। विस्मृत धन का पुनः स्मरण होने से प्राप्त आय अन्य आय है

अर्थशास्त्र में जो कर प्रणाली या धनसंग्रहण की प्रणाली की चर्चा प्राप्त होती है वह निश्चित ही राज्य-व्यवस्था के पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करने, औद्योगिक एवं कृषि विकास को बढ़ाने के साथ रोजगार सृजन, सामाजिक न्याय की स्थापना, राज्य की प्रजा के लिए गरीबी उन्मूलन जैसे लोक कल्याणकारी कार्यों के आदर्श को स्थापित करने के उद्देश्य से किए गए हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कर प्रणाली और राजस्व व्यवस्था राज्य की आर्थिक रीढ़ है। संतुलित, न्यायसंगत एवं निर्दिष्ट कर प्रणाली न केवल राज्य की आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करती है, बल्कि सामाजिक समरसता और आर्थिक विकास का भी मार्ग प्रशस्त करती है।

कृषि, उद्योग और वाणिज्य

कौटिल्य (चाणक्य) के अर्थशास्त्र में राज्य की समृद्धि का आधार कृषि, उद्योग और वाणिज्य को माना है। कृषि पशुपालन और वाणिज्य को अर्थशास्त्र में वार्ता कहा गया है। लोक जीवन के लिए वार्ता अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकारक होता है। कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धनपशु हिरण्यकुप्यविशिष्टप्रदानादौपकारिकी। तयास्वपक्षंपरपक्षंचवशीकरोतिकोशदण्डाभ्याम्। आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः[22]। कृषि कार्य के लिए राजकीय अधिकारी करने की व्यवस्था की गई है। तथा सीताध्यक्ष के रूप में कृषि प्रबंधक की नियुक्ति भी अर्थशास्त्र में प्रधानता से की गई है। इन्हें उन्होंने आर्थिक शक्ति और राज्य की स्थिरता के मुख्य स्तंभ के रूप में देखा है। जैसे - कौटिल्य के अनुसार कृषि राज्य की आय का सबसे बड़ा और स्थायी स्रोत है। इसीलिए अर्थशास्त्र में कृषि प्रबंध कर्ता को कृषिशास्त्र शुल्बशास्त्र आयुर्वेदादिशास्त्रों के ज्ञाता होने का निर्देश किया गया है। अर्थशास्त्र में कहा है - सीताध्यक्षः कृषि-तन्त्र-शुल्ब-वृक्षायुर्वेद ज्ञस्तज्ज्ञ -सखो वा सर्वधान्य-पुष्प-फल-शाक-कन्द-मूल-वाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथा कालं गृह्णायात्[23]। किसानों को सुरक्षा, बीज, औजार और करों में रियायत की व्यवस्था करना कृषि प्रबन्धक के लिए आवश्यक बताया गया है। बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत। कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चौषामसङ्गं कारयेत्[24]। सिंचाई की व्यवस्था के लिए नहरें, तालाब और जल-प्रबंधन करना कृषि प्रबंधक का महत्त्वपूर्ण कार्य था।

उद्योग

उद्योग से राज्य की आय बढ़ती है और रोजगार मिलता है। उद्योग के अंतर्गत बुनकर, लोहार, कुम्हार आदि को राज्य का समर्थन प्राप्त होने का संकेत अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र के अनुसार आकाराध्यक्षः शुल्ब-धातुशास्त्र-रस-पाक-मणि-रागज्ञस्त -ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसंपन्नः किट्टमूषाङ्गरभस्मलिङ्गं वाकरं

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमि प्रस्तररसध ातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्ष्येत[25]। अर्थात् विविध खानों के अध्यक्ष को धातुओं का ज्ञान रसशास्त्र का ज्ञान अर्थात् कोई भी धातु अधिक शक्तियुक्त कैसे हो इसका ज्ञान होना चाहिये । किस रस में किसके मिश्रण से शक्तिवृद्धि होती है इत्यादि अनेकों विषयों से संबंधित उद्योगों का विचार अर्थशास्त्र में प्राप्त है। सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धि:[26]। कुछ प्रमुख उद्योग जैसे खनन, शस्त्र निर्माण सीधे राज्य के अधीन होने चाहिये तथा जो शिल्पकार है वे पर्याप्त वेतन आदि का निर्णय करके कार्य करें। इसी प्रकार सौवर्णिक: पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमाशनिभि: कारयेत्[27] इत्यादि से प्रभूत उद्योग की चर्चा की गई है। तथा आवश्यकतानुसार कार्य की अधिकता से अतिरिक्त कार्य करने का निर्देश भी अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। निश्चित रूप से उद्योग राज्यव्यवस्था की दृष्टि से तथा वृत्ति की दृष्टि से जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके लिए प्रभूत विचार अर्थशास्त्र में किया गया है।

वाणिज्य

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में आंतरिक और बाह्य सभी व्यापार को महत्त्व दिया है। सुवर्णादि के व्यापार के लिए नियत स्थान का निर्णय राज्य-व्यवस्था द्वारा किए जाने की चर्चा की गई है। इसी प्रकार से लौह पात्रों इत्यादि के व्यापार की चर्चा की गई है।

व्यापार को सुगम बनाने के लिए भी अर्थशास्त्र में अनेक व्यवस्था किए जाने का संकेत प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत सड़कों और बाजारों की सुरक्षा को राज्य की आर्थिक समृद्धि और राजनैतिक स्थिरता के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है। उनके अनुसार सुरक्षित मार्गों के बिना व्यापार संभव नहीं और व्यापार के बिना राज्य समृद्ध नहीं हो सकता। स्थलीय और जलीय दोनों मार्गों का विकास। व्यापार के वस्तुओं के मूल्य का नियंत्रण भी राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत कही गई है। राज्य की आय बढ़ाने के लिए व्यापार शुल्क का निर्धारण करना, व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा हेतु चौकियों का निर्माण कराना अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। क्योंकि मार्ग के सुरक्षित होने से व्यापार मे वृद्धि होती है, व्यापार में वृद्धि से राज्य के आय में वृद्धि होती है जिससे राज्य की आर्थिक शक्ति सुदृढ होती है तथा लोककल्याण के कार्य अधिक हो सकते हैं। जिससे प्रजा का जीवन सुखमय हो सकता है।

कोष का संरक्षण और वृद्धि

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कोष (राज्य-कोष) को राज्य की शक्ति, स्थिरता और सफलता का मूल आधार माना गया है। उनके अनुसार मजबूत कोष के बिना राज्य न सुरक्षित रह सकता है और न ही प्रजा का कल्याण कर सकता है। इसलिए उन्होंने कोष के संरक्षण और वृद्धि दोनों पर विशेष बल दिया। कौटिल्य ने राज्य-कोष की रक्षा को राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया। अर्थशास्त्र में धन संग्रहण के लिए शुल्काध्यक्ष की नियुक्ति के साथ शुल्कशाला के निर्माण की पृथक् व्यवस्था की गई है। साथ शुल्क-व्यवहार किस वस्तु पर कितना शुल्क अपेक्षित है इसका भी निर्धारण किया गया है। इसके लिए शुल्कव्यवहाराध्याय नाम से स्वतन्त्र अध्याय अर्थशास्त्र में लिखा गया है।

कौटिल्य ने कोष-वृद्धि के लिए अनेक वैध और व्यावहारिक उपाय बताए। इसके लिए राज्य में अर्थ संकट होने पर भी राजा धनसंग्रहण कर सकता है। जैसे कि कोशमकोश: प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्र: संगृह्णीयात्। जनपदं महान्तमल्पमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचते[28]। अर्थात् जब राजकोश में धन कम हो जाए अर्थसंकट आ पड़े तो छोटे बड़े प्रांत से जहाँ प्रभूत अन्न हो वहाँ से तृतीय या चतुर्थ अंश प्रजा की स्वीकृति से ले सकता है इस संदर्भ में अनेक व्यवस्थाएँ अर्थशास्त्र में की गई है।

दंडनीति द्वारा व्यवस्था-स्थापन

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंडनीति को राज्य में व्यवस्था, अनुशासन और न्याय स्थापित करने का सबसे प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। तथा संपूर्ण अर्थशास्त्र का आधार भी कहा जा सकता है। दंडनीतिमधितिष्ठन् प्रजास्संरक्षति, दण्डस्संपदा योजयति[29]। अर्थात् दंडनीति के आश्रय से ही राजा संपूर्ण प्रजाओं की रक्षा करता है। राजकोष की वृद्धि दंडनीति पर ही निर्भर होती है तथा स्वयं की रक्षा भी दंडनीति से ही संभव हो सकती है दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम्, आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति, आत्मायत्तौ वृद्धि विनाशौ[30]। कौटिल्य के अनुसार दण्ड के बिना न धर्म की रक्षा होती है और न ही समाज में शांति बनी रह सकती है। अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति[31]। इसी प्रकार के विचार कौटिल्य प्रणीत कौटिल्यसूत्र मे भी प्राप्त होते हैं। दण्डे प्रतीयते वृत्ति:, वृत्तिमूलमर्थलाभ:, अर्थमूलौ धर्मकामौ, अर्थमूलं कार्यं[32]। दंड का अर्थ केवल शारीरिक दंड नहीं, बल्कि दंडात्मक कानून, आर्थिक दंड, सामाजिक दंड, प्रशासनिक दंड, कौटिल्य के अनुसार: दंड ही प्रजा को कर्तव्य-पथ पर बनाए रखता है। न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति[33]। दंड का भय अपराध को रोकता है। अपराधी ही नहीं, अन्य लोग भी अपराध से बचते हैं। दंड अपराध के अनुसार होना चाहिए। न अत्यधिक कठोर, न अत्यधिक नरम। राजा और अधिकारी भी दंड से ऊपर नहीं। अपराधी की स्थिति, आयु और भूमिका को ध्यान में रखकर दंड। राज्य-हित सर्वोपरि। दंड में देरी से व्यवस्था

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कोष को राज्य की शक्ति, स्थिरता और सफलता का मूल आधार माना गया है। उनके अनुसार मजबूत कोष के बिना राज्य न सुरक्षित रह सकता है और न ही प्रजा का कल्याण कर सकता है। इसलिए उन्होंने कोष के संरक्षण और वृद्धि दोनों पर विशेष बल दिया। कौटिल्य ने राज्य-कोष की रक्षा को राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया। अर्थशास्त्र में धन संग्रहण के लिए शुल्काध्यक्ष की नियुक्ति के साथ शुल्कशाला के निर्माण की पृथक् व्यवस्था की गई है। साथ शुल्क-व्यवहार किस वस्तु पर कितना शुल्क अपेक्षित है इसका भी निर्धारण किया गया है

कमजोर होती है। त्वरित और निश्चित दंड आवश्यक। दंड-नीति से प्रशासनिक अनुशासन बना रहता है। भ्रष्ट अधिकारियों पर कठोर दंड। गुप्तचर व्यवस्था से अपराध ों की जानकारी। कौटिल्य के अनुसार दंड का उद्देश्य व्यवस्था बनाए रखना, धर्म की रक्षा, प्रजा का कल्याण, जहाँ उचित दंड होता है, वहाँ प्रजा सुखी रहती है। कौटिल्य सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि सुखस्यमूलं धर्मः, धर्मस्य मूलम् अर्थः, अर्थस्य मूलं राज्यम्, राज्यमूलम् इन्द्रियजयः, इन्द्रियजयमूलं विनयः[34] मनुष्य के जीवन के लिए जन्म से मृत्युपर्यंत जो भी व्यवहार मनुष्य करता है उसके लिए जो अपेक्षित उपाय संसाधन हैं उनकी व्याख्या करने वाला शास्त्र ही कौटिल्य के अनुसार अर्थशास्त्र है। यद्यपि अर्थशास्त्र में उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य सप्तांग शासन व्यवस्था, भैषज्यमंत्रप्रयोग आदि का भी विचार अर्थशास्त्र में अर्थ पुरुषार्थ के अंतर्गत ही किए गए हैं। तथापि विस्तार भय के कारण उनका विचार इस शोधपत्र में नहीं किया गया है।

इस प्रकार कौटिल्य के अनुसार अर्थ प्रधान पुरुषार्थ है धर्म और काम अर्थ पर आधारित हैं स्थिर अर्थ व्यवस्था के बिना मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्ति भी दुर्लभ है कौटिल्य के दर्शन में अर्थ पुरुषार्थ आधारभूत और केंद्रीय है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अर्थ पुरुषार्थ केवल धन-संग्रह तक सीमित नहीं है, बल्कि वह राज्य और समाज के सम्यक् संचालन का साधन है। धर्म, काम और अंततः मोक्ष तीनों की सिद्धि के लिए अर्थ को अनिवार्य माना गया है। इसी कारण कौटिल्य का अर्थविचार भारतीय राजनीतिक एवं दार्शनिक परंपरा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण और आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ-

1. महाभारत, वनपर्व, अध्याय-131 श्लोक-सं.11
2. धर्मकीर्ति, न्यायबिन्दु में
3. वाल्मीकि रामायण
4. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/1,2 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
5. कौटिलीय अर्थशास्त्र चाणक्यप्रणीतसूत्रम् 1-2 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
6. कौटिलीय अर्थशास्त्र ¼ सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
7. कौटिलीय अर्थशास्त्र 4/7 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
8. कौटिलीय अर्थशास्त्र चाणक्यप्रणीतसूत्रम् 2, सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
9. कौटिलीय अर्थशास्त्र चाणक्यप्रणीतसूत्रम् 3 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
10. कौटिलीय अर्थशास्त्र चाणक्यसूत्रम् 156 सम्पादक डॉ श्यामलेशकुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
11. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/1 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
12. कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/12/41 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
13. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/3 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
14. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/22-24 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
15. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/8 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
16. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/4 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
17. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/17-19 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
18. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/22 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
19. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/24 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
20. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/25 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
21. कौटिलीय अर्थशास्त्र 6/24/26 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
22. कौटिलीय अर्थशास्त्र 4/1-4 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
23. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/24/41 /1 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
24. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/24/41/2-3 उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श नई दिल्ली
25. कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/4/1 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
26. कौटिलीय अर्थशास्त्र 1/4/7 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
27. कौटिलीय अर्थशास्त्र 2/14/1 उदयवीरशास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन्श,नई दिल्ली
28. कौटिलीय अर्थशास्त्र अ. 2 1-2 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणस
29. कौटिलीय अर्थशास्त्र कौटिल्यसूत्रम् 79-80 सम्पादक डॉ श्यामलेशकुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
30. कौटिलीय अर्थशास्त्र कौटिल्यसूत्र 83-85 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
31. कौटिलीय अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र 15/1/15 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
32. कौटिलीय अर्थशास्त्र कौटिल्यसूत्र 89-92 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
33. कौटिलीय अर्थशास्त्र कौटिल्यसूत्र 82 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी
34. कौटिलीय अर्थशास्त्र कौटिल्यसूत्र 1-5 सम्पादक डॉ श्यामलेश कुमार तिवारी, चौखम्भासुर भारती प्रकाशन वाराणसी

सजी नारायणन

श्रमिक क्षेत्र में भारतीय दृष्टि की पुनर्संरचना

गिग के नाम पर श्रम की प्रकृति को अस्थायी किए जाने की प्रक्रिया अब पश्चिम से पूरब का रुख कर रही है। भारतीय श्रम नीति के पश्चिमी प्रभाव के खतरों का एक वस्तुगत विश्लेषण

भारत का श्रम क्षेत्र गहन और तीव्र परिवर्तनों से गुजर रहा है। गिग और प्लेटफॉर्म आधारित कार्यप्रणाली, शोषणकारी वैश्विक आपूर्ति शृंखलाएँ (supply chains), संविदा श्रम एवं निश्चित अवधि के रोजगार (Fixed Term Employment) की बढ़ती प्रवृत्ति, असंगठित क्षेत्र का विस्तार, तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), स्वचालन (automation), रोबोटिक्स, क्लाउड कम्प्यूटिंग, बिग डेटा, मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों का इंडस्ट्री 4.0 के ढाँचे में समावेश - इन सबने श्रम-जगत की परिभाषा ही बदल दी है।

"गिग" (gig) शब्द अब गिग इकॉनमी, गिग उद्योग और गिग श्रमिकों जैसे शब्दों से व्यापक रूप से जुड़ गया है। "गिग" शब्द स्वयं अस्थायित्व का प्रतीक है-अल्पकालिक, अस्थिर, और सुरक्षा रहित श्रम।[1] इसका आशय है कि भविष्य में संपूर्ण अर्थव्यवस्था पाँच से दस वर्षों के अल्पकालिक चक्रों में संचालित हो सकती है, और यदि वह यथासमय रूपांतरित न हो, तो उसका पतन निश्चित है। इसी प्रकार, उद्योग भी पाँच-छह वर्षों में ही टिक पाएंगे, और यदि वे विविधीकरण (diversification) नहीं करेंगे तो समाप्त हो जाएंगे। श्रम का स्वभाव भी उसी परिणति को प्राप्त होगा। कई विश्लेषकों का मानना है कि यह मॉडल शीघ्र ही वैश्विक सामान्य मानक बन सकता है।[2]

मानवीय संबंधों की अस्थायी प्रकृति की बढ़ती प्रवृत्ति पश्चिमी समाजों के लिए कोई नवीनता नहीं है; उसने वहाँ गहन सामाजिक विघटन को जन्म दिया है। अपराध दरों में वृद्धि, पारिवारिक जीवन का विघटन, और तलाकों की भयावह बढ़ोत्तरी इसी के परिणाम हैं।[3]

आपूर्ति शृंखलाएँ उत्पादन की नई प्रतिमान बन गई हैं। पहले बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (MNCs) हजारों श्रमिकों को एक छत के नीचे विशाल कारखानों में नियोजित करती थीं। आज वही कंपनियाँ बहु-स्तरीय वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं के माध्यम से कार्य करती हैं, जिनमें आवश्यक पुर्जों और घटकों के उत्पादन को अनेक छोटे, आश्रित, अधीनस्थ इकाइयों और लघु कारखानों को सौंप दिया जाता है। विडंबना यह है कि इन कंपनियों के ये विशाल साम्राज्य उन्हीं असुरक्षित और अल्पवेतन भोगी अंतिम श्रमिकों (end workers) के श्रम पर टिके हैं। परंतु इस संरचना के शीर्ष पर स्थित बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अक्सर इन अंतिम श्रमिकों के साथ किसी प्रत्यक्ष रोजगार-संबंध से इनकार करती हैं, जिससे परंपरागत नियोक्ता-कर्मचारी संबंध टूट जाता है और जवाबदेही का गंभीर अभाव उत्पन्न होता है।[4] ये कंपनियाँ भारत जैसे देशों को केवल सस्ते श्रम और कच्चे माल के स्रोत के रूप में देखती हैं।[5]

इंडस्ट्री 4.0 से जुड़ी विघटनकारी तकनीकें मुख्यतः श्रम-विस्थापक प्रकृति की हैं।[6] हमें नूतन प्रौद्योगिकी, नवाचार और सुधार, ये सभी की आवश्यकता है। यद्यपि तकनीक औद्योगिक दक्षता बढ़ा सकती है, फिर भी तकनीकी और औद्योगिक प्रगति के लाभ समाज पर प्रतिकूल प्रभाव न डालें, और उनके फल तीनों प्रमुख हितधारकों के मध्य समान रूप से वितरित हों, यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।

श्रम का अस्थायीकरण

हालिया सुधारों का सबसे हानिकारक परिणाम संगठित क्षेत्र में श्रम की बढ़ती अस्थायीकरण

है।[7] वैधानिक वेतन और लाभों के भुगतान से बचने के लिए, अनेक नियोक्ता अब अस्थायी पदनामों के तहत श्रमिकों को नियुक्त करते हैं, जैसे ठेका श्रमिक, कैजुअल वर्कर, बदली कर्मचारी, शिक्षु (apprentice), प्रशिक्षु (trainee), परीक्षणावधि कर्मचारी (probationer) या अंशकालिक कर्मचारी (part-time); भले ही उनका कार्य स्थायी प्रकृति का हो।

सुरक्षित और सम्मानजनक रोजगार से अस्थिर, अल्पगुणवत्ता वाले श्रम की ओर यह चिंताजनक संक्रमण न केवल श्रमिकों के अधिकारों को कमजोर करता है, बल्कि सामाजिक न्याय की संवैधानिक रूपरेखा को भी आघात पहुँचाता है। विशेष रूप से, यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण नीतियों को भी अप्रभावी बना देता है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली को दरकिनार करता है।[8]

श्रम कानून सुधार

भारत का व्यापार घाटा चीन जैसे देशों के साथ अत्यधिक बढ़ा हुआ है।[9] ऐसी स्थिति में जब भारत का विनिर्माण क्षेत्र को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में कठिनाई हो रही है, तब श्रम सुधारों में मानवीय या श्रमिक-केंद्रित दृष्टिकोण के लिए बहुत कम स्थान बचता है। यह असंतुलन उद्योग और श्रमिकों के बीच टकराव को और तीव्र करेगा, जिससे सुधार की प्रक्रिया विवादास्पद और संघर्षपूर्ण बन जाएगी। वैश्विक प्रतिस्पर्धा की बढ़ती अर्थव्यवस्था में उद्योग लागत घटाने की दिशा में अग्रसर रहते हैं, और सबसे पहले इसकी मार श्रम-लागत पर पड़ती है।[10]

परिणामस्वरूप, श्रम सुधारों का ध्यान 'हायर एंड फायर' नीति पर केंद्रित हो गया है, अर्थात् 'Ease of Closing Business' (व्यवसाय बंद करने की सरलता) पर, न कि 'Ease of Doing Business-' (व्यवसाय करने की सरलता) पर। हाल के कई श्रम सुधारों के परिणामस्वरूप रोजगार-विहीन वृद्धि (jobless growth), अस्थिर रोजगार, और औपचारिक क्षेत्र का अनौपचारिकीकरण देखने को मिला है।[11] श्रम निरीक्षकों को अब 'निरीक्षक-सह-सुविधाकर्ता' (Inspector cum Facilitator) के रूप में पुनर्परिभाषित किया गया है।[12] अनेक उद्योगों को मूल श्रम कानूनों से छूट दी गई है, जिससे ऐसे 'कानून-विहीन क्षेत्र' बन रहे हैं।

श्रम संबंधों में प्रतिद्वंद्वी दृष्टिकोण

पाश्चात्य औद्योगिक न्यायशास्त्र और श्रम संबंध स्वामी-दास (master-servant) संबंध पर आधारित हैं।[13] भारत का प्रमुख श्रम कानून औद्योगिक विवाद अधिनियम भी इसी पाश्चात्य ढाँचे पर निर्मित है, जो विरोधात्मक अवधारणा पर टिका है, जहाँ नियोक्ता और श्रमिक को दो परस्पर विरोधी पक्षों के रूप में देखा जाता है, और सरकार की भूमिका केवल 'सामूहिक सौदेबाजी' नामक इस संघर्ष में एक मध्यस्थ की होती है।

वर्तमान श्रम परिदृश्य में तीन वैचारिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं-
1. साम्यवादी वर्ग-शत्रु दृष्टिकोण, जिसमें नियोक्ता वर्ग को शत्रु माना जाता है;
2. पूँजीवादी दृष्टिकोण, जो श्रम को केवल उत्पादन का एक कारक या वाणिज्यिक वस्तु (commodity) मानता है और उसका शोषण करता है; तथा
3. भारतीय विकल्प - 'उद्योग परिवार' की अवधारणा, जो उद्योग को एक सहयोगी और जैविक इकाई के रूप में देखती है, जहाँ नियोक्ता और कर्मचारी एक ही उत्पादक और विस्तारित परिवार के सदस्य हैं।

साम्यवादी देशों में श्रमिक वर्ग के शासन की जो बातें कही गई, वे कभी साकार नहीं हुई; वहाँ अंततः पार्टी-शासन ही स्थापित हुआ।

तीन हितधारक

रामायण में, जब राजा दशरथ का निधन हुआ, तो भरत अत्यंत शोकग्रस्त हुए। उन्हें सांत्वना देते हुए श्रीराम ने रामराज्य की नींवों को समझाया- "हमारे पिता ने तीन कारणों से स्वर्ग की प्राप्ति की। पहला, उन्होंने अपने कर्मचारियों की अच्छी देखभाल की।

दूसरा, उन्होंने कर-संग्रह का कार्य प्रसन्नता से किया, नियोक्ताओं के सहयोग से, बिना किसी को कष्ट पहुँचाए। तीसरा, राजा का सर्वोच्च धर्म अपने प्रजाजनों की रक्षा और सुरक्षा करना है।

इन तीनों कर्तव्यों का पालन करके ही हमारे पिता ने स्वर्ग प्राप्त किया"। यह प्राचीन बोध त्रिपक्ष प्रणाली (Tripartism) - श्रम, पूँजी और राज्य के बीच सामंजस्यपूर्ण सहयोग - का नैतिक और दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है।

इसीलिए, भारतीय मजदूर संघ ने नारा दिया: 'राष्ट्र हित, उद्योग हित और मजदूर हित।'

अर्थात् तीनों हितधारकों - राष्ट्र, उद्योग और श्रम - के हितों का सामंजस्यपूर्ण संरक्षण आवश्यक है। जब अधिशेष श्रम का प्रबंधन पूँजीवाद में नियोक्ता और

साम्यवाद में राज्य करते हैं, तब श्री गुरुजी गोलवलकर ने कहा था कि हिंदुओं के लिए "श्रम का अधिशेष मूल्य राष्ट्र का होता है"।

1973 में ठाणे में हुए अपने अंतिम भाषण में श्री गुरुजी गोलवलकर ने कहा था - "हर उद्योग में श्रम भी पूँजी का ही एक रूप है। प्रत्येक श्रमिक के श्रम का मूल्यांकन एक हिस्सेदारी (share) के रूप में होना चाहिए, और श्रमिकों को उस श्रम-हिस्से के आधार पर हिस्सेदार (shareholders) का दर्जा दिया जाना चाहिए।"[17]

दत्तोपंत जी ने बल दिया कि जब भी नियोक्ता और श्रमिक के बीच कोई समझौता हो, तो उपभोक्ता के हितों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। समाज सभी औद्योगिक संबंधों का तीसरा, और अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है।[18] इनके लाभ निम्नलिखित तीनों को प्राप्त होंगे -

- नियोक्ता: लाभ के रूप में;
- श्रमिक: उचित वेतन, शारीरिक श्रम के बोझ में कमी, लाभ-साझेदारी और मानवीय कार्य-घंटों के रूप में;
- उपभोक्ता: उचित और वहनीय मूल्यों के रूप में।

रोजगार सृजन

सरकार के ईमानदार प्रयासों के बावजूद, रोजगार सृजन एक गंभीर आर्थिक चुनौती बना हुआ है। आवश्यकता केवल नौकरियाँ पैदा करने की नहीं, बल्कि गुणवत्तापूर्वक और गरिमापूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने की है।[19] नीतिगत भूलें, जैसे एग्जिट पॉलिसी, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (VRS), कर्मचारियों की संख्या में कटौती (downsizing), शाखाओं का rightsizing, नियुक्ति प्रतिबंध, निजीकरण, अंधाधुंध स्वचालन, और नियमित नौकरियों के स्थान पर ठेका श्रम की नियुक्ति, इन सबने मिलकर बड़े पैमाने पर बेरोजगारी को जन्म दिया है।

मूलत:, रोजगार को विस्तारित आर्थिक गतिविधि का उप-उत्पाद के रूप में समझना चाहिए। भारत जैसे श्रम-संपन्न देश में सतत विकास के लिए पूँजी-प्रधान नहीं, बल्कि श्रम-प्रधान तकनीक, नीतियाँ, सुधार और तकनीकी रणनीतियाँ आवश्यक हैं, वर्तमान श्रम-विस्थापक विकास प्रवृत्ति के विपरीत।

यद्यपि नवाचार और तकनीकी प्रगति अत्यावश्यक हैं, हमें "नौकरी समाप्ति रहित तकनीक" और "रोजगार-सृजनकारी नवाचार" की आवश्यकता है। तकनीकी परिवर्तन आज श्रम-जगत और रोजगार पर गहरा प्रभाव डाल रहे हैं।[20] स्वचालन (automation) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने रोजगार-छिनने और पारंपरिक श्रम के क्षरण को लेकर चिंताएँ बढ़ा दी हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री शक्तिकांत दास के शब्दों में, "श्रम के स्थान पर स्वचालन से पूँजी और श्रम के बीच का अंतर और विस्तृत हो सकती है, जिससे एक खंडित श्रम बाजार बनता है - जहाँ एक ओर कम कौशल और कम वेतन वाले रोजगार होते हैं, तो दूसरी ओर उच्च कौशल और उच्च वेतन वाले रोजगार, जबकि मध्यवर्ती स्तर के रोजगार तकनीक द्वारा विस्थापित हो जाते हैं"।[21]

मशीनें और कंप्यूटर मनुष्य के सहायक बनें, उसे प्रतिस्थापित करने या उसके स्वामी बनने के बजाय। भारत को इन तकनीकी परिवर्तनों को अपनाना (adopt) नहीं, बल्कि अनुकूल (adopt) बनाना चाहिए, अपनी सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप। तकनीकी परिवर्तन बाहरी दबाव से नहीं, भीतर की आवश्यकताओं से होने चाहिए। जब दत्तोपंत जी ने कम्प्यूटरीकरण का विरोध किया था, तब उन्होंने जो तर्क दिए थे, वे आज भी विश्वभर में प्रासंगिक और चर्चित हैं। भारतीय मजदूर संघ का स्पष्ट मत है-"हम कंप्यूटराइजेशन का विरोध करते हैं, कंप्यूटर का नहीं।"

असंगठित क्षेत्र के खतरे

मार्क्स ने केवल औद्योगिक श्रमिकों को ही सच्चा सर्वहारा वर्ग माना,[22] जबकि कारीगरों, किसानों, दुकानदारों, लघु उद्योगपतियों और निम्न मध्यमवर्गीयों को 'क्षुद्र बुर्जुआ' (petty bourgeoisie) कहकर तिरस्कृत किया।[23] कृषि श्रमिकों को तो उसने पूरी तरह बाहर कर दिया और यहाँ तक कहा कि किसान वर्ग 'आलुओं की बोरी' के समान है।[24]

भारत की आर्थिक वृद्धि अभी भी असंतुलित और अन्यायपूर्ण है। विश्व स्तर पर भारत उस देश के रूप में जाना जाता है जहाँ सबसे बड़ा असंगठित श्रमबल है, जो कुल रोजगार का लगभग 93% हिस्सा है।[25] नियोक्ता संगठनों के अनुसार, अस्थायीकरण के कारण लगभग 42% श्रमिक ठेका श्रमिक हैं।[26] यदि संगठित क्षेत्र के भीतर के ठेका श्रमिकों को भी जोड़ दिया जाए, तो यह आँकड़ा लगभग 97% तक पहुँच जाता है। वैश्विक स्तर पर "Informal Sector" शब्द का प्रयोग होता है, जबकि भारत के कानूनों में इसे "Unorganised Sector" कहा गया है।[27] एक विचित्र विरोधाभास यह है कि जहाँ अर्थव्यवस्था औपचारिकीकरण की ओर बढ़ रही है, वहीं श्रमिकों का अनौपचारिकीकरण हो रहा है।

रोजगार को विस्तारित आर्थिक गतिविधि का उप-उत्पाद के रूप में समझना चाहिए। भारत जैसे श्रम-संपन्न देश में सतत विकास के लिए पूँजी-प्रधान नहीं, बल्कि श्रम-प्रधान तकनीक, नीतियाँ, सुधार और तकनीकी रणनीतियाँ आवश्यक हैं, वर्तमान श्रम-विस्थापक विकास प्रवृत्ति के विपरीत। यद्यपि नवाचार और तकनीकी प्रगति अत्यावश्यक हैं, हमें "नौकरी समाप्ति रहित तकनीक" और "रोजगार-सृजनकारी नवाचार" की आवश्यकता है। तकनीकी परिवर्तन आज श्रम-जगत और रोजगार पर गहरा प्रभाव डाल रहे हैं। स्वचालन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने रोजगार-छिनने और पारंपरिक श्रम के क्षरण को लेकर चिंताएँ बढ़ा दी हैं

पश्चिमी जगत में श्रम की गरिमा को कार्ल मार्क्स और लुई ब्लांक जैसे दार्शनिकों के हस्तक्षेप से पहले, शायद ही कभी मान्यता मिली हो। पूँजीवादी ढाँचे ने परंपरागत रूप से सभी को वाणिज्यिक वस्तु के रूप में देखा, जैसे प्रकृति वस्तु है, स्त्री वस्तु है, भूमि वस्तु है, और उसी प्रकार श्रम भी एक वस्तु है। इसी दृष्टिकोण से जैसी संज्ञा लोकप्रिय हुई, जिसका भारतीय मजदूर संघ ने अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन में विरोध किया है। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय संस्कृति ने श्रम को अत्यंत सम्मान का स्थान दिया। यजुर्वेद में श्रमिकों के प्रत्येक वर्ग को नमन किया गया है, जो आधुनिक परिभाषा में असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत आएँगे

जब वैश्विक वित्तीय संकट आया और इससे पहले एशियाई आर्थिक संकट के समय भी, भारत सबसे कम प्रभावित हुए,[28] क्योंकि हमारी लगभग 80% उद्योग-गतिविधियाँ अभी भी असंगठित क्षेत्र में संचालित होती हैं। पर दूसरी ओर, श्रम क्षेत्र में काम करते समय एक गंभीर चुनौती यह है कि समाज के सबसे गरीब वर्ग इसी असंगठित क्षेत्र में संलग्न हैं। उन्हें सामान्यत: उचित वेतन, कार्य-स्थल की गरिमा, व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य-सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और रोजगार-सुरक्षा का अभाव रहता है। ग्रामीण श्रमिक बेहतर वेतन और रोजगार की खोज में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन के लिए विवश हैं, जिससे एक विशाल प्रवासी श्रमिक वर्ग शहरों में विकसित हुआ है। कोविड-19 महामारी ने इन श्रमिकों की दयनीय और असुरक्षित दशा को स्पष्ट रूप से उजागर किया, और भारत के श्रम पारिस्थिति की तंत्र की भंगुरता को सामने रखा।

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की State of Working India (2018) रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 82% पुरुष श्रमिक और 92% महिला श्रमिक ₹10,000 प्रति माह से कम आय अर्जित करते हैं।[29] अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि भारत के 80% बाल श्रमिक अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से आते हैं, जो सामाजिक असमानता की गहराई को दर्शाता है।[30] असंगठित क्षेत्र का संघर्ष मूलत: असंतुलित विकास के सुधार हेतु संरचनात्मक रूपांतरण के व्यापक आंदोलन का हिस्सा है। इन श्रमिकों का सशक्तीकरण सहानुभूति नहीं, बल्कि ठोस उपायों की माँग करता है, जिनमें उचित वेतन, समग्र सामाजिक सुरक्षा (जिसमें स्वास्थ्य बीमा सम्मिलित हो) और शिक्षा में सार्वजनिक निवेश आवश्यक हैं।

सार रूप में, भारत में श्रम की बदलती अवधारणा आर्थिक आधुनिकीकरण और सामाजिक न्याय के मध्य गहरे तनाव को प्रकट करती है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि तकनीकी और औद्योगिक प्रगति मानव कल्याण में सहायक बने और मनुष्य को सशक्त करे, न कि उसका स्थान ले। भारत को ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण करना होगा, जो उसके धर्म, सहयोग और समानता की संस्कृति के अनुरूप हो।

कामकाजी महिलाएँ

कामकाजी महिलाएँ, जो आत्मत्याग का प्रतीक हैं, घर और कार्यस्थल दोनों पर अनेक भूमिकाएँ और जिम्मेदारियाँ निभाती हैं। वे एक साथ तीन उत्तरदायित्वों का वहन करती हैं - पहला, श्रम से संबंधित; दूसरा, पारिवारिक; और तीसरा, मातृत्व या प्रजनन से संबंधित।[31] उन्हें इन तीनों के बीच संतुलन बनाए रखना होता है, जबकि पुरुषों के सामने ऐसी स्थिति नहीं आती। अत: कामकाजी महिलाओं के प्रति विशेष ध्यान और संवेदनशीलता आवश्यक है। हमारी सभी नीतियाँ और विधियाँ इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए।

आईएलओ का सम्मानजनक कार्य एजेंडा

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) सम्मानजनक कार्य (Decent Work) की अवधारणा को बढ़ावा देता है,[32] जिसमें सम्मानजनक वेतन, सामाजिक सुरक्षा, मानवीय कार्य परिस्थितियाँ जैसे युक्तिसंगत कार्य-घंटे, कल्याण प्रावधान, व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य, लैंगिक न्याय, रोजगार-सुरक्षा और प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र शामिल हैं। किन्तु भारत और अमेरिका दो ऐसे प्रमुख देश हैं जिन्होंने श्रमिकों के कल्याण और संरक्षण से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण आईएलओ अभिसमयों (conventions) का अब तक अनुमोदन नहीं किया है।[33]

भारतीय दृष्टिकोण

पश्चिमी जगत में श्रम की गरिमा को कार्ल मार्क्स और लुई ब्लांक जैसे दार्शनिकों के हस्तक्षेप से पहले, शायद ही कभी मान्यता मिली हो।[34] पूँजीवादी ढाँचे ने परंपरागत रूप से सभी को वाणिज्यिक वस्तु के रूप में देखा, जैसे प्रकृति वस्तु है, स्त्री वस्तु है, भूमि वस्तु है, और उसी प्रकार श्रम भी एक वस्तु है। इसी दृष्टिकोण से "Labour Market" जैसी संज्ञा लोकप्रिय हुई, जिसका भारतीय मजदूर संघ ने अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) में विरोध किया है। इसके विपरीत, प्राचीन भारतीय संस्कृति ने श्रम को अत्यंत सम्मान का स्थान दिया। यजुर्वेद में श्रमिकों के प्रत्येक वर्ग को नमन किया गया है, जो आधुनिक परिभाषा में असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत आएँगे[35]-

नमस् तक्षभ्यो रथकारेभ्यश् च वो नमो नम: कुलालेभ्य: कर्मारेभ्यश् च।
वो नमो नमो निषादेभ्य: पुञ्जिष्ठेभ्यश् च वो नमो नम: श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश् च वो नम:

=बढ़ई, रथ-निर्माता, कुम्हार, लोहार, निषाद, शिकारी, चरवाहे और कारीगर - इन सभी को पुन:-पुन: नमस्कार।

इस भावभूमि में, विश्वकर्मा को दिव्य शिल्पी, प्रथम श्रमिक तथा श्रम के आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। स्वामी विवेकानंद ने इसी श्रम-संस्कृति की

पुनर्स्मृति कराते हुए कहा था- "राष्ट्र का उत्थान हल थामे किसानों की झोपड़ियों से; मछुआरों, मोचियों और सफाईकर्मियों की कुटियों से होना चाहिए।"[36]

भारतीय समाज में श्रमिक, कृषक और लघु उद्योग अर्थ-संपदा सृजन के तीन आधारस्तंभ हैं। पारंपरिक भारतीय आर्थिक चिंतन ने स्वरोजगार, अर्थात् विश्वकर्मा क्षेत्र, को प्राथमिकता दी थी, न कि केवल वेतन आधारित रोजगार को।[37] प्राचीन ग्रंथों में ऐसे सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा उपायों का उल्लेख मिलता है जो आधुनिक कल्याणकारी योजनाओं से अद्‌भुत समानता रखते हैं जैसे रोगावकाश, अवकाश अधिकार, पेंशन और पारिवारिक पेंशन, तीन प्रकार के श्रेणीबद्ध वेतन, बोनस (जिसे वार्षिक वेतन के आठवें भाग के बराबर 'विलंबित वेतन' कहा गया है), कर्मियों का वर्गीकरण, क्षतिपूर्ति योजनाएँ, तथा कार्यस्थल पर न्यायसंगत व्यवहार।[38] रामायण जैसे ग्रंथों में नियोक्ता-कर्मचारी संबंधों के लिए चिरकालिक नैतिक दिशानिर्देश दिए गए हैं। प्राचीन ग्रंथों में श्रमिकों तथा वेतन को तीन श्रेणियों, उत्तम, मध्यम और अधम, में विभाजित किया गया है, जिससे श्रम प्रबंधन की गहन समझ सिद्ध होती है।[39] शुक्रनीति में स्पष्ट चेतावनी दी गई है कि "कम वेतन, कठोर व्यवहार, अपमान, गाली-गलौज तथा अन्यायपूर्ण दंड" कर्मचारियों में असंतोष उत्पन्न करते हैं। यह यथार्थ आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में था।[40]

भारत में आज श्रम-संस्कृति का स्तर अपेक्षाकृत निम्न है, विशेषत: बड़े कारखानों में; जबकि जापान जैसे देशों में यह अत्यंत उच्च है। इस स्थिति का मूल कारण साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव रहा है। सन् 1919 से लेकर भारतीय मजदूर संघ के सशक्त संगठन बनने तक, भारतीय श्रम क्षेत्र की पूरी सोच वर्ग-संघर्ष की अवधारणा पर आधारित थी। परिणामस्वरूप, श्रम क्षेत्र में सतत संघर्ष, हड़ताल और टकराव की संस्कृति जारी रही।

परंतु भारतीय श्रम का दृष्टिकोण सदा से उच्च श्रम-संस्कृति या वृत्ति धर्म से निर्देशित रहा है, जो "श्रम ही आराधना" के दर्शन पर आधारित है। श्रम-संस्कृति केवल श्रमिकों के लिए नहीं, बल्कि नियोक्ताओं के लिए भी आवश्यक है। जब नियोक्ता और कर्मचारी दोनों इस श्रम धर्म का पालन करते हैं, तो औद्योगिक संघर्ष और हड़तालें अनावश्यक हो जाती हैं। जापान इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। वहाँ हड़तालों का प्रतिशत न्यूनतम है,[41] क्योंकि कई अवसरों पर स्वयं नियोक्ता ही श्रमिक कल्याण का एजेंडा तय करते हैं।

श्रम-संबंध मानवीय संबंध हैं। किंतु भारत में बढ़ती अस्थायीकरण, आउटसोर्सिंग और गिग वर्क की प्रवृत्तियाँ इस मानवीय ताने-बाने को क्षीण कर रही हैं, क्योंकि भारतीय समाज का ताना-बाना संबंधों पर आधारित है, जिसमें स्थायित्व और निरंतरता को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। लगभग 80-90% उद्यम, विशेषत: लघु और मध्यम उद्योग, दीर्घकालिक संबंधों पर टिके हुए हैं। दुकानदार और ग्राहक, बैंकर और ग्राहक, नियोक्ता और कर्मचारी - इन सबमें संबंध ही आधार हैं। अधिकांश उद्योग पारिवारिक प्रकृति के हैं, जो हमारी संस्कृति के स्थायी संबंधों पर आधारित दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। इस संदर्भ में, स्थायी नौकरी केवल आर्थिक सुरक्षा का प्रतीक नहीं, बल्कि विश्वास पर आधारित स्थायी नियोक्ता-कर्मचारी संबंध का प्रतीक भी है

उद्योग परिवार और प्रतिद्वंद्वी प्रणालियाँ

मूलत:, श्रम-संबंध मानवीय संबंध हैं। किंतु भारत में बढ़ती अस्थायीकरण, आउटसोर्सिंग और गिग वर्क की प्रवृत्तियाँ इस मानवीय ताने-बाने को क्षीण कर रही हैं, क्योंकि भारतीय समाज का ताना-बाना संबंधों पर आधारित है, जिसमें स्थायित्व और निरंतरता को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। लगभग 80-90% उद्यम, विशेषत: लघु और मध्यम उद्योग, दीर्घकालिक संबंधों पर टिके हुए हैं।[42] दुकानदार और ग्राहक, बैंकर और ग्राहक, नियोक्ता और कर्मचारी - इन सबमें संबंध ही आधार हैं। अधिकांश उद्योग पारिवारिक प्रकृति के हैं, जो हमारी संस्कृति के स्थायी संबंधों पर आधारित दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। इस संदर्भ में, स्थायी नौकरी केवल आर्थिक सुरक्षा का प्रतीक नहीं, बल्कि विश्वास पर आधारित स्थायी नियोक्ता-कर्मचारी संबंध का प्रतीक भी है।

इसे सुदृढ़ करने हेतु भारतीय मजदूर संघ ने एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया है -"उद्योग परिवार"; जो पश्चिमी मास्टर-सर्वेंट (स्वामी-दास) की अवधारणा और साम्यवादी वर्ग-विरोधी दृष्टिकोण दोनों का स्थान लेता है। मजदूर संघ का यह मॉडल मूल्य-आधारित, सहयोगात्मक औद्योगिक व्यवस्था का पक्षधर है, जो विरोध नहीं बल्कि पारिवारिक एकता पर आधारित है।

परंपरागत टकरावादी ट्रेड यूनियनवाद अब बदलते श्रम-जगत की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। पहले व्यवस्था यह थी कि जब भी किसी कारखाने के निचले स्तर पर विवाद उत्पन्न होता, यूनियन सीधे श्रम विभाग में शिकायत दर्ज करती और विभाग दोनों पक्षों को बुलाकर निपटारा करता।[43] अब यह प्रणाली भारतीय मजदूर संघ और नियोक्ता संगठनों के सामंजस्यपूर्ण प्रयासों से परिवर्तित हुई है, और श्रम संहिता (Labour Code) में "द्विपक्षवाद" (Bipartism) नामक नया अध्याय जोड़ा गया है।[44] इसका सार यह है कि किसी भी विवाद का निपटारा पहले सबसे निचले स्तर पर, दोनों पक्षों के बीच प्रत्यक्ष संवाद से होना चाहिए। यही द्विपक्षीय संस्कृति का

मर्म है, एक पारिवारिक संस्कृति। केवल तब ही मामला त्रिपक्षवाद (Tripartism) की ओर बढ़े जब द्विपक्षवाद असफल हो।

इस प्रकार, साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव क्षीण हो रहा है, और ट्रेड यूनियनों को राष्ट्रीय परिवर्तन के साधन के रूप में विकसित होना होगा, युवाओं और महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के साथ; ताकि वे एक न्यायसंगत और सामंजस्यपूर्ण औद्योगिक व्यवस्था के निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभा सकें।

'अंत्योदय' - अंतिम व्यक्ति के विकास के लिए

राष्ट्र की प्रगति का मार्ग पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के प्रतिपादित 'अंत्योदय' के सिद्धांत से निर्देशित होना चाहिए,[45] अर्थात् अंतिम व्यक्ति का उत्थान, जो "सर्वे भवन्तु सुखिनः" (सब सुखी हों) के आदर्श को मूर्त रूप देता है, न कि असंतुलित या बहिष्कृत विकास को।

भारतीय मजदूर संघ (BMS) के सतत प्रयासों के फलस्वरूप पहली बार वेतन संहिता (Code on Wages) में न्यूनतम वेतन को प्रत्येक श्रमिक का अधिकार के रूप में मान्यता दी गई।[46] यह स्वतंत्रता के सात दशकों बाद की ऐतिहासिक उपलब्धि है। न्यूनतम वेतन नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन जीवनस्तर में क्रांतिकारी सुधार, क्रयशक्ति में वृद्धि, और वेतन-आधारित आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने में सक्षम है। भारतीय मजदूर संघ ने 'अंत्योदय' के सिद्धांत को अंतरराष्ट्रीय मंचों जैसे BRICS और L20[47] में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया, जहाँ इसे "Universalisation of Workers' Benefits", अर्थात् मुख्यतः सभी सामाजिक सुरक्षा लाभ अंतिम श्रमिक तक पहुँचें, के रूप में व्यक्त किया गया। इस प्रस्ताव को सहभागी देशों द्वारा व्यापक प्रशंसा मिली और अब यह उनके आधिकारिक दस्तावेजों का अंग बन चुका है।

पूर्व में श्रम क्षेत्र में साम्यवादी विचारधारा ने एक अलग प्रवाह उत्पन्न किया था, परंतु श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के प्रयासों से उसमें महान परिवर्तन आया। श्रम क्षेत्र आज भी उसमें प्रचलित पश्चिमी धारणाओं के पुनर्विच्छेदन की मांग करता है। फिर भी, श्रम क्षेत्र अब भी अपने भीतर व्याप्त पश्चिमी धारणाओं के पुनर्विच्छेदन की माँग करता है।

संदर्भ-

1. ILO, Exploring the gig economy: Challenges and opportunities A self-guided resource, 2025 p.8: "गिग (Gig)" शब्द अल्पकालिक नौकरी या कार्य के लिए प्रयुक्त एक बोलचाल का शब्द है। Collins Dictionary- अमेरिकी अंग्रेजी में "Gig" का अर्थ किसी भी प्रकार का कार्य होता है, विशेषकर अस्थायी या आकस्मिक कार्य।
   Cambridge dictionary- Gig job से आशय ऐसी नौकरी से है जो अस्थायी होती है, जिसमें अधिक कार्य-घंटे उपलब्ध नहीं होते, या जो किसी भी समय समाप्त हो सकती है, और जिसमें सामान्यतः किसी नियोक्ता के अधीन काम करने के बजाय स्वयं के लिए कार्य करना शामिल होता है।
2. "गिग कार्य मॉडल विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में एक सामान्य मानक के रूप में उभर रहा है।" https://www.zoho.com/blog/workerly/the-gig-economy-an-emerging-norm.html
3. Worldwide Increasing Divorce Rates: A Sociological Analysis, Mohammad Taghi Sheykhi, Professor Emeritus of Sociology, Alzahra University, Tehran, Iran.
4. IndustriALL- Workers' rights in global supply chains: holding companies accountable, https://www.industriall-union.org/unite-industriall-calls-affiliates-to-action-during-the-16-days-of-activism
5. World Economic Forum, Shifting Global Value Chains: The India Opportunity WHITE PAPER JUNE 2021
6. Technological Disruption In The Labor, Market: A Global Perspective, Boning Yuan, Australian National University, Australia, International Journal of Economics, Commerce and Management United Kingdom ISSN 2348 0386 Vol. 13, Issue 7, July 2025.
7. State of Working India Report 2018, Azim Premji University.
8. ओडिशा उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि ग्राम रोजगार सेवक (GRS) की भर्ती पर आरक्षण लागू नहीं होगा, क्योंकि इसे एक "संविदात्मक पद (Contractual Post)" माना गया है। Biswaranjan Panigrahi vs Govt- in Panchayati Raj & Drinking Water Department & anr-] W-P-(C) No-13017 of 2018] 6&2&2025] (Ori HC). ओडिशा उच्च न्यायालय ने अपना निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्देश के आधार पर दिया, जिसमें कहा गया है - "भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) के आधार पर कोई भी व्यक्ति आरक्षण को मौलिक अधिकार के रूप में दावा नहीं कर सकता।" सर्वोच्च न्यायालय -Mukesh Kumar v. State of Uttarakhand, (2020) 3 SCC 1.
9. India-China trade gap: Deficit widens to $99.2 billion in 2024-25 TIMES OF INDIA, Aug 30, 2025.
10. Haw, Jared. "The Hidden Costs of Low-Cost Sourcing." Open Bom, 19 April. 2024, www.openbom.com/blog/the-hidden-costs-of-low-cost-sourcing. Accessed 18 Jan. 2025.
11. https://edukemy.com/blog/how-globalization-has-led-to-the-reduction-of-employment-in-the-formal-sector-of-the-indian-economy-is-increased-informalization-detrimental-to-the-development-of-the-country-150-words-10-marks/
12. व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्य स्थिति संहिता, 2020, धारा 34.
13. https://edurev.in/t/373678/Overview-Master-Slave-Relations-and-Labour-

Law#:~:text=course%20for%20free-,The%20Nature%20of%20Master%20and%20Servant%20Relationship,the%20servant%20is%20the%20ruled.
14. 'औद्योगिक परिवार' की अवधारणा 'FOCUS On The Socio&Economic Problems'] D- B- Thengadi] Suruchi Sahitya New Delhi-
15. Valmiki Ramayana, 2.105.33:
भृत्यानाम् भरणात् सम्यक् प्रजानाम्
परिपालनात्।
अर्थ आदानाच् च धार्मेण
16. 1972 में ठाणे बैठक में दिया गया भाषण, जिसे Third Way पुस्तक में उद्धृत किया गया है। – Third Way, D. B. Thengadi p.57.
17. Ibid.
18. Ibid.
19. अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ILO, Decent Work Country Programme for India 2023 & 2027, https://www.ilo.org/publications/decent-work-country-programme-india-2023-2027#:~:text=9%20April%202024,to%20enhance%20your%20user%20experience
20. The Impact of AI on the Job Market and Employment Opportunities, University of San Diego. https://onlinedegrees.sandiego.edu/ai-impact-on-job-market/#:~:text=AI%20has%20a%20significant%20impact,navigate%20these%20changes%20with%20ease.
21. RBI के गवर्नर शक्तिकांत दास का वक्तव्य– foreword to the Central Bank's Report on Currency and Finance, https://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business/digital-push-is-driving-out-mid-level-banking-staff-rbi/articleshow/112121208.cms
22. Marx, Karl & Engels, Friedrich. *Manifesto of the Communist Party* (1848). In Marx-Engels Collected Works (MECW), Vol. 6. Moscow: Progress Publishers, 1976, p. 482; Marx, Karl & Engels, Friedrich. *Manifesto of the Communist Party*, Marx&Engels Collected Works (MECW), Vol. 6, Progress Publishers, Moscow, 1976, p. 493.
23. Engels, Friedrich. *Principles of Communism* (1847). In MECW, Vol. 6. Progress Publishers, Moscow, 1976, p. 347.
24. The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte (1852)
25. 'India's 93%, 437 Million That Holds Up The Economy But Lacks A Voice', India Spend, 12 Apr, 2013.
26. On the rise: Share of contract labour at 42%, highest in over 25 years, Business Standard, Sep 09 2025, citing the latest Annual Survey of Industries (ASI), Business Standard, Sep 09 2025.
27. असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनिय, 2008.
28. The Global Economic Crisis: Impact on India and Policy Responses, Rajiv Kumar and Pankaj Vashisht No. 164 November 2009, https://www.adb.org/sites/default/files/publication/156019/adbi-wp164.pdf
29. State of Working India (2018) report by Azim Premji University.
30. तेलंगाना श्रम विभाग द्वारा किया गया एक नमूना सर्वेक्ष, The News Minute, 15 Feb 2019.
31. Working From Home and the Triple Role of Women in the Context of COVID-19-Induced Lockdowns, https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC9922660/
32. Decent Work Agenda का प्रथम उल्लेख 1999 की ILO रिपोर्ट में किया गया था और 2008 में इसे प्स्० की घोषणा के अंग के रूप में औपचारिक रूप से अपनाया गया–ILO's Declaration on Social Justice for a Fair Globalization.
33. ILO घोषणा के अनुवर्ती क्रियान्वयन के अंतर्गत वार्षिक प्रतिवेदनों की समीक्ष - ILO Declaration on Fundamental Principles and Rights at Work (1998), as amended in 2022, 13 March 2025, ILO 353rd Session, Geneva, 10&20 March 2025.
34. Benoy Kumar Sarkar, Hindu Political Philosophy, p. 482.
35. Shukla Yajurveda 16.27.
36. Swami Vivekananda, Volume 7, Memoirs Of European Travel.
37. D. B. Thengadi, Third Way, P. 38.
38. D. B. Thengadi, Quo Vadis, भूमिका, Hindu Economics.
39. Valmiki Ramayanan 2.100.25:
कच्चिन्मुख्या महात्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः।।
40. Śukra Nīti 2.418-419.
41. 'What is more effective than staging strikes in achieving better working conditions?' June 9, 2020, Prof NOGAWA Shinobu, Meiji University, https://english-meiji.net/articles/305/
42. "भारत में लगभग 90% व्यवसाय परिवारों द्वारा संचालित किए जाते है"। 'Analysing Family-Owned SME's & Study The Factors Influencing Them', Bhargav Ram Munagapati, Dr. Srinivasa Rao D, Professor, International Journal of Civil Engineering and Technology (IJCIET), Volume 9, Issue 2, February 2018, pp. 307&317,
43. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, धारा 12.
44. औद्योगिक संबंध संहिता, अध्याय 2.
45. पं. दीनदयाल उपाध्याय (1969), 'भारतीय अर्थनीति – विकास की एक दिशा', राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ। 'Deendayal Upadhyaya's Antyodaya, idea towards poverty alleviation', Snehlata dixit, Prof. Tej pal Singh, Prof. Rashmi Priyadarshini, Educational Administration: Theory and Practice 2024, 30(11), 2705-2710.
46. वेतन संहिता, 2019, धारा 5.
47. L20 India Summit, 21st –23rd June 2023 Patna, Bihar, India, https://www.g20.utoronto.ca/l20/2023-L20%20Statement.pdf; University of Toronto, G20 Information, https://www.g20.utoronto.ca/l20/index.html

भारतीय संविधान पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

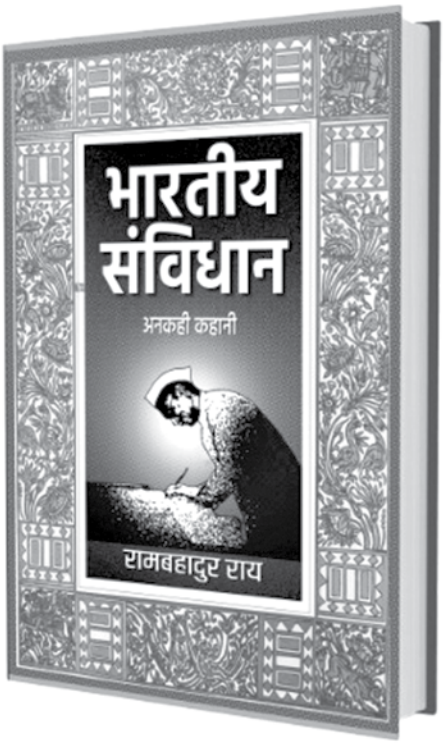

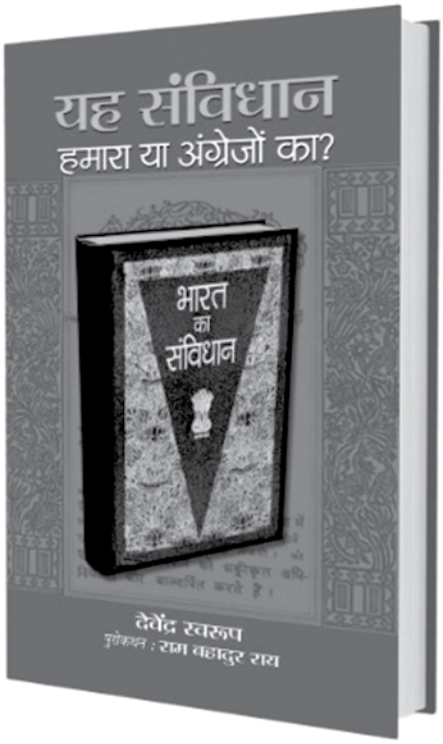

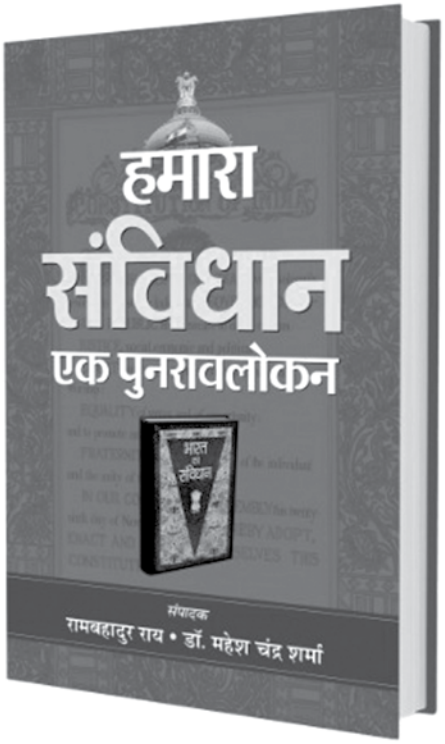

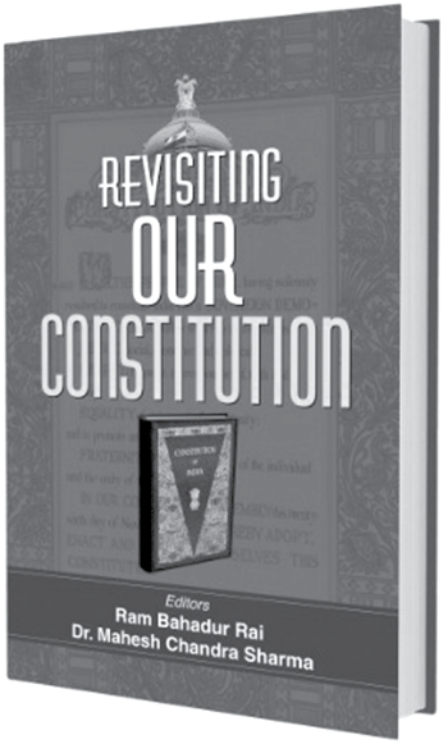

7000 से अधिक पुस्तकों का विस्तृत सूची-पत्र निशुल्क पाने के लिए लिखें—

पोस्टेज फ्री

हेल्पलाइन नं. 7827007777

प्रभात प्रकाशन

ISO 9001 : 2015 प्रकाशक

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

☎ 011-23289777

E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✣ Website : www.prabhatbooks.com ✣ www.facebook.com/prabhatprakashan

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः.....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....पत्रिका भाषा हिंदी ☐/ अंग्रेजी ☐

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

नोट : पत्रिका साधारण डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। यदि आप पत्रिका स्पीड पोस्ट से प्राप्त करना चाहें, तो कृपया डाक एवं प्रबंधन शुल्क स्वरूप रु 150/- वार्षिक अतिरिक्त राशि का भुगतान करें।

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

छत्तीसगढ़ शासन

छत्तीसगढ़ रजत महोत्सव 25 वर्षों का उत्कर्ष वर्षों का संकल्प

विष्णु के सुशासन में
महिला सशक्तीकरण

महिला शक्ति को सम्मान

69 लाख से अधिक महिलाओं को महतारी वंदन योजना के अंतर्गत प्रतिमाह **₹1000** की सहायता

प्रधानमंत्री मातृवंदना योजना के अंतर्गत 4.81 लाख महिलाओं को **₹237 करोड़** की सहायता

19 लाख से अधिक महिलाओं को पूरक पोषण आहार की सुनिश्चितता

महिला सुरक्षा के लिए **सखी वन स्टॉप सेंटर** और महिला हेल्पलाइन **181** की स्थापना

महिलाओं को रोजगार मूलक कार्यों के जरिए स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने के लिए पंचायत स्तर पर **179 महतारी सदनों** का निर्माण

श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

हमसे जुड़ने के लिए QR स्कैन करें

/ChhattisgarhCMO
/DPRChhattisgarh
www.dprcg.gov.in

छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

सुशासन से समृद्धि की ओर

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

डबल इंजन की सरकार में विकास सुपरफास्ट

- **रावघाट- जगदलपुर रेल परियोजना** के साथ रेल नेटवर्क मैप से जुड़ रहा बस्तर
- **पीएम जनमन योजना** के साथ जनजाति समुदाय का हो रहा विकास
- दक्षिण छत्तीसगढ़ में **बोधघाट परियोजना** बनेगी हरियाली और समृद्धि का वरदान
- **महतारी वंदन** से महिलाओं को संबल
- किसानों को बकाया बोनस, **पीएम किसान सम्मान निधि** का भी लाभ
- **26 लाख से अधिक** परिवारों को अपना पक्का आवास
- जगदलपुर-विशाखापट्टनम और रायपुर-विशाखापट्टनम **नई सड़क परियोजनाओं** से विकास की नई राहें
- स्पष्ट नीति और मजबूत निर्णयों के साथ **सुशासन का राज**

श्री विष्णु देव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

सुशासन से समृद्धि की ओर

ChhattisgarhCMO DPRChhattisgarh www.dprcg.gov.in